शरणागति

लेखक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी०ए० ऑनर्स, एम०ए०

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2015
प्रतियाँ : 1000

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497**
मुद्रक : **यू०आर०बी० प्रिंटिंग प्रैस, शैड नं. 2, रतपुर कॉलोनी, पिंजौर,**
मो. 9466111730, 9466112730

दैनिक प्रार्थना

1. **ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।**
   धियो यो नः प्रचोदयात्।। यजुर्वेद 36.3

   हे प्रभु! आप सर्वरक्षक, प्राणाधार, सुखस्वरूप, दुःखनाशक, सत्-चित्-आनंद स्वरूप हैं। आप ही सृष्टि के उत्पादक, पालक, संहारक, वेदज्ञानदाता एवं कर्मफलदाता हैं। हम आपके प्रेरणादायक, शुद्धस्वरूप, वरणीय, परमपवित्र, दिव्यस्वरूप का हृदय मंदिर में ध्यान धरते हैं। आप हमारी बुद्धियों को कृपया श्रेष्ठ मार्ग की ओर प्रेरित कीजिए।

2. **ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।**
   यजुर्वेद 30.3

   हे प्रभु! आप कृपया हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए और जो कल्याणकारी गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं वे हमें प्राप्त कराइए।

3. **ओ३म् असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमयेति।**
   बृहदारण्यकोपनिषद् 1.3.28

   हे प्रभु! मुझे झूठ से सत्य की ओर अंधकार से प्रकाश की ओर, और मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।

4. **त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।**
   त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव।।
   प्रपन्नगीता श्लोक 28

   हे प्रभु! आप ही मेरे माता-पिता हो, आप ही मेरे बन्धु-बांधव हो। आप ही मेरी विद्या और धन सम्पत्ति हो। आप ही मेरे सब कुछ हो।

5. **सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।**

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत् । ।

हे प्रभु ! सब सुखी हों, सब स्वस्थ और निरोग हों, सब का कल्याण हो और कोई भी प्राणी दुःखी न हो ।

हे प्रभु ! मेरा आज का यह दिन सब से शुभ दिन हो । मैं ऐसा कोई भी कार्य न करूँ जिससे किसी का अहित हो । मेरा यह जीवन न केवल मेरे लिये अपितु मेरे सुखी परिवार, सुन्दर समाज, प्रिय राष्ट्र एवं सारे संसार के लिये कल्याणकारी हो ।

ओ३म् शांति ! शांति ! ! शांति ! ! !

भूमिका

मेरी प्रिय आत्माओ ! आज का युग भौतिकवाद का युग है । धन को आज का मानव साध्य मान बैठा है । परन्तु यह सत्य नहीं है ; क्योंकि धन साधन है न कि साध्य । धन सेवक है न कि स्वामी । शरीर को कायम रखने के लिये धन परमावश्यक है । काम मन का विषय है, धर्म बुद्धि का विषय है और आनंद आत्मा का विषय है । वस्तुतः मानवजीवन के लिये भौतिकवाद एवं आध्यात्मवाद दोनों ही आवश्यक हैं । वस्तुतः जीवन भौतिकवाद एवं आध्यात्मवाद का सुन्दर समन्वय है ।

अब प्रश्न उठता है कि अध्यात्म क्या है ?अध्यात्म साधना नहीं अपितु साधना की तैयारी है । अध्यात्म निहंकार की पराकाष्ठा है । वस्तुतः दर्शन व अध्यात्म हमारी थाती हैं । आनंद का स्रोत केवल अध्यात्म है । इसका अर्थ है स्वभाव । और भौतिकवाद का अर्थ है प्रभाव । इसका भाव है स्वयं की ओर जाना और यह जानना कि आत्मा क्या है ?परमात्मा क्या है ? आदि । परन्तु यह दारुण दुर्भाग्य का विषय है कि आजकल अधिकतर व्यक्ति केवल भौतिकवाद की अंधी चूहा-दौड़ में दौड़ रहे हैं और दिन प्रतिदिन उनकी रुचि अध्यात्म की ओर घट रही है । भारतीय संस्कृति तीन 'द' पर आधारित है – दया, दान और दमन । इसके विपरीत पाश्चात्य संस्कृति तीन D पर आधारित है -- Drinking, Dancing और Dining । याद रखो ! भौतिकवाद में क्षणिक सुख तो है परन्तु सच्ची शांति एवं आनंद केवल आध्यात्मिकवाद में ही है । जैसे आचार्य श्री सुदर्शन जी लिखते हैं--

कितना भी धन संग्रह करलो,
मन में शांति नहीं होती ।
भरलो हीरा मोती घर में,
किसी कफ़न के जेब नहीं होती । ।

-संगीतमय रामकथा (उत्तरकांड पृ० 715)

अतः मैंने प्रस्तुत पुस्तक में अधिकतर आध्यत्मिक विषयों को ही लिया है ताकि आज के व्यक्ति की रुचि अध्यात्म की ओर बढ़े जैसे शरणगति, प्रेम, कामना, पुनर्जन्म आदि आध्यात्मिक विषय हैं । इन विषयों का एक खूबसूरत

गुलदस्ता मैं आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ। लीजिए अब आप भी इस रूहानी गुलदस्ते रूपी ''शरणागति'' के फूलों को देखिए और झूम-झूम कर आनंद विभोर हो जाइए।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री नरेन्द्र आहूजा 'विवेक' जी, नरेश बंसल जी, जयकिशन जी, सरदारी लाल धवन जी, सत्यपाल मोदी जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है। अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतघ्नता होगी। श्री नरेन्द्र आहूजा 'विवेक' जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान दिया है। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान रूप में संयोजन न हो पाता। जिस अचिंत्य शक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्तरूप दे सका उसका भी कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ। मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है। परन्तु संसार का प्रत्येक व्यक्ति अल्पज्ञ एवं अपूर्ण है। अतः कोई भी त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण से क्षमा चाहूँगा।

धर्म पाल कपूर

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

तिथि : 14-1-2015 ई०

आमुख

मन समर्पित, तन समर्पित, धन समर्पित
और यह जीवन समर्पित ।
चाहता हूँ मानव जाति को
अभी कुछ और भी दूँ ।

इस जीवन लक्ष्य को लेकर चलने वाले धर्मपाल कपूर जी की वाटिका का यह तेरहवाँ पुष्प आपके हाथों में है । यद्यपि उन्होंने 32 पुस्तकें लिखी हैं किन्तु अभी तक 12 पुष्प वे लोकार्पित कर चुके हैं । धर्म प्रचार एवं मानव-निर्माण के संकल्प की उनकी प्रतिबद्धता श्लाघनीय एवं अनुकरणीय है । स्वनामधन्य श्री धर्मपाल जी लेखनी के सशक्त धनी हैं । उनमें सोचने व उस सोच के प्रस्तुतिकरण की विलक्षण प्रतिभा है । वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि वे अनेक युक्तियों, प्रमाणों एवं घटनाओं-कथाओं के माध्यम से इतनी सरल और ग्राह्य भाषा में देते हैं कि वह पाठक के हृदय को छू जाती हैं तथा वहाँ अविस्मरणीय छाप अंकित कर जाती है ।

प्रस्तुत ग्रंथ में लेखक ने मानव के सर्वांगीण विकास के लिए 9 सोपनों में कार्यक्रम दिया । 'शरणागति' से लेकर 'चार पलियाँ' तक इन 9 सोपानों का आत्मसात् अवगाहन पाठक को देवत्व की ओर प्रेरित करेगा ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है । किसी भी ग्रंथ की सम्पूर्णता को जानने के लिए जिन सात कसौटियों का निर्धारण किया गया है, वे कसौटियाँ हैं :

उपक्रमोपसंहारौ अभ्यासोऽपूर्वता फलम्
अर्थवादो उपपत्तिश्च लिंग तात्पर्य निर्णये ।।

ग्रंथ का आरम्भ, उसकी पुनरुक्ति, अपूर्वता, निष्कर्ष, अर्थवाद एवं उपपत्ति । इन सभी कसौटियों पर प्रस्तुत ग्रंथ पूरा उतरता है । यदि मैं यह कहूँ

कि इस ग्रंथ का प्रत्येक अध्याय अपने में पूर्ण है तो अतिशयोक्ति न होगी। दिये गये असंख्य उद्धरण गागर में सागर भर रहे हैं। दिल चाहता है कि इन 9 विषयों पर मैं भी कुछ लिखूँ किन्तु ऐसा करना लेखक एवं इस कृति के प्रति अन्याय होगा। अतः केवल यह कहना चाहूँगा–

ज्ञानी, तुष्टश्च दान्तश्च, सत्यवादी, जितेन्द्रियः।

दाता दयालुर्नम्रश्च स्यादार्यो ह्यष्टभिर्गुणैः।।

इन सभी 8 गुणों से युक्त ये धर्म के पालक अपनी 'कपूर' सी सुगन्ध से समाज की सभी दिशाओं को सुवासित व सुगंधित करते रहें, क्योंकि इस कृति का :

मनुर्भव झूठ नहीं बोलने देगा

ज्ञान भयभीत नहीं होने देगा

आध्यात्म मोह करने नहीं देगा

सत्य कमजोर होने नहीं देगा

प्रेम ईर्ष्या करने नहीं देगा

और विश्वास कभी दुःखी होने नहीं देगा।

कृष्ण आर्य
M.Sc. M.Phil. Ph.D.
866/4 पंचकूला
फोन 9530800866

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मो० : 0-9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	शरणागति	1
2.	नमस्ते	9
3.	कामना	15
4.	त्रैतवाद	24
5.	पुनर्जन्म	33
6.	सौरमण्डल	46
7.	शिक्षा और दीक्षा	54
8.	गौमाता	63
9.	चार पलियाँ	73

1. शरणागति

जहाँ ले चलोगे, वहीं मैं चलूँगा ।
जहाँ नाथ रखोगे वहीं मैं रहूंगा ।।
यह जीवन समर्पित चरणों में तुम्हारे ।
तुम्हीं मेरे सर्वस्व तुम्हीं मेरे सहारे ।।

शरणागति का अर्थ है मन, बुद्धि, इन्द्रियों आदि को प्रभु को सौंपना । फिर जीव अकर्ता हो जाता है, माया हट जाती है और प्रभु कर्ता हो जाते हैं । इसका अर्थ है कि प्रभु की इच्छा में इच्छा रखना उसकी इच्छा के प्रतिकूल इच्छा न रखना, प्रभु को सदा अपना रक्षक समझना उसकी अनेक कृपाओं के प्रति कृतज्ञता रखना और सब कुछ उसका मानना और कभी भी किसी वस्तु का अभिमान न करना । जैसे मछली का जल में, पपीहे का मेघ में, चकोर का चन्द्रमा में जैसा प्रेम है वैसा ही हमारा प्रभु में हो । एक पल भी उसके बिना चैन न मिले, शांति न मिले । ऐसा प्रेम प्रेममय संतो की कृपा से ही प्राप्त होता है । जैसे कामिनी के नूपुरों की झंकार सुनकर कामी के हृदय में काम जाग्रत हो जाता है । वैसे ही यदि प्रेमी के कानों में भगवान् की ध्वनि पड़ती है तो वह प्रेम में विभोर हो जाता है । यदि वह किसी भगवद्रसिक महापुरुष के दर्शन कर लेता है तो उसकी आँखें गुलाब के फूल की भाँति खिल जाती हैं और उनसे झर-झर अश्रुपात होने लगता है । हम तो केवल प्रेम का नाम ही लेते हैं । वास्तविक प्रेम कुछ और ही वस्तु है । वह सर्वथा अलौकिक एवं अनिवर्चनीय है । उस तक मन एवं वाणी नहीं पहुँच सकते हैं । बुद्धि भी उसका स्पर्श नहीं कर सकती है । जैसे नरेन्द्र आहूजा ''विवेक'' जी लिखते हैं–

जो जाता हरि शरण में, उसका बेड़ा पार ।
जो उस पर संशय करे, वही गिरे मझदार ।।

शरणागति पाने के उपाय :–

1. सरलता का भाव :– प्रभु की शरणागति पाने के लिये बच्चे की भाँति सरल होना चाहिये । बच्चे को बच्चा इसलिये कहा जाता है क्योंकि वह पाप से बचा होता है । जब तक कोई भी व्यक्ति बच्चे की भाँति सरल, सहज एवं

पापरहित नहीं होता, तब तक प्रभु के प्रति शरणागति हो ही नहीं सकती। क्योंकि प्रभु सब के लिये न्यायकारी हैं परन्तु शरणागत के लिये कृपालु एवं दयालु है। जैसे श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं–

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।9.22
जो करते हैं ख़ालिब (अनन्य) इबादत (भक्ति) मेरी
जो यकदिल (अनन्यनिष्ट) हो जी में न रखें दुई।
करूँ हाजतें (आवश्यकताएँ) उनकी पूरी तमाम
वो मेरी हिफ़ाजत (रक्षा) में हों सुबह शाम।।

जो व्यक्ति अनन्य भाव एवं निरंतर मेरा चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते हैं, उनकी आवश्यकताएँ मैं पूरी करता हूँ और जो कुछ उनके पास है उसकी रक्षा करता हूँ। वस्तुतः अप्राप्त की प्राप्ति योग और प्राप्त की रक्षा का नाम क्षेम है। जैसे बाइबल में भी कहा गया है–

Come unto me that are heavy laden and I shall give you rest.

परन्तु हम देखते हैं कि सम्पूर्ण शरणागति या सम्पूर्ण समर्पण बहुत कम होता है। यहाँ तक कि बुद्ध का चचेरा भाई आनंद भी सम्पूर्ण समर्पण नहीं कर सका। वस्तुतः समर्पण आधा अधूरा नहीं होता है अपितु समर्पण सम्पूर्ण ही होता है। जैसे महात्मा बुद्ध के जीवन की एक घटना है कि महात्मा बुद्ध के बड़े भाई आनंद ने बुद्ध के सामने निम्नलिखित तीन शर्तें रखी थीं–

1. जहाँ आप जाओगे मैं भी वहाँ जाऊँगा। आप अकेले कहीं नहीं जाओगे।
2. आप जिस कमरे में सोयेंगे उसमें मैं भी सोऊँगाा।
3. जिस व्यक्ति को मैं जब चाहूँगा आपसे मिलवाऊँगा आप उस व्यक्ति से मिलने से इनकार नहीं कर सकते।

कहने का तात्पर्य यह है कि आनंद ने बुद्ध के प्रति सम्पूर्ण समर्पण नहीं किया था। अतः आनन्द ने बुद्ध से कहा कि आपने हज़ारों व्यक्तियों को आनंद प्रदान कर दिया। परन्तु आज लगभग 40 वर्षों के पश्चात् भी मुझे

आनंद प्राप्त नहीं हुआ । बुद्ध ने उत्तर दिया आप का समर्पण अधूरा है । जब तक मैं शरीर में रहूँगा आप को कभी भी आनंद की उपलब्धि नहीं हो सकती । कहते हैं बौद्ध की मृत्यु पश्चात् ही आनंद को आनंद की प्राप्ति हो गई । शास्त्रार्थ महारथी पं. रामचन्द्र देहलवी लिखते हैं–

परमात्मा आनंदघन है, उसकी शरण में जाने से कोई भी दुःख शेष नहीं रहता . ..... इसलिये यदि हम सदा परमात्मा का चिन्तन रखेंगे, तो मर्यादा से बाहर नहीं हो सकेंगे ।

–पं. रामचन्द्र देहलवी लेखावली पृ. 33

2. निर्मलता का भाव :– प्रभु शरणागति के लिये मन का निर्मल होना परमावश्यक है यदि किसी व्यक्ति का मन शुद्ध नहीं है तो वह प्रभु के प्रति शरणागत कभी भी नहीं हो सकता है जैसे श्रीराम जी सुग्रीव को उपदेश देते हुये कहते हैं–

निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा ।।

–रामचरितमानस (सुन्दर काण्ड) 43.5

3. अहंकार का अभाव :– प्रभुकृपा तभी होती है जब कोई भी व्यक्ति प्रभुशरण में आ जाता है । प्रभु आप के मन की क्रिया को नोट करते हैं । वे प्रभु मेरे हैं और मैं उनका हूँ । ऐसा नहीं कहना चाहिये अपितु यह कहना चाहिये कि वे ही मेरे हैं और मैं उनका ही हूँ । जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

शांति शांति सब कहें, शांत रहे न कोय ।
जो मन में शांति रहे तो अहंकार काहे को होय ।।

वस्तुतः हम प्रसन्न इसलिये नहीं हैं क्योंकि हम अहंकार द्वारा शासित किये जाते हैं । अहंकार प्रभुमिलन में सब से बड़ी बाधा और प्रभुमिलन के लिए अहंकार का त्याग करके ही व्यक्ति प्रभुशरणागति में जा सकता है । यहाँ तक कि शरणागति के लिये श्रीकृष्ण को भी गीता अर्जुन को सुनानी पड़ी । वस्तुतः गीतासार है–शरणागति ।

4. सेनापति और सेना :– सेना ने समर्पण कर दिया और अब सेना अपने सेनापति की आज्ञानुसार शत्रु के विरुद्ध लड़ेगी ।

5. डॉक्टर और रोगी :– जब हम बीमार पड़ जाते हैं तो डॉक्टर के निर्देशानुसार दवा लेते हैं । डॉक्टर के किसी भी प्रकार के निर्देश का उल्लंघन नहीं करते ।

6. अध्यापक और विद्यार्थी :– अध्यापक के आदेशानुसार विद्यार्थी कार्य करते हैं जैसे अध्यापक ने विद्यार्थियों को पढ़ाया कि Knife (चाकू), Knight (सरदार) आदि किसी भी विद्यार्थी ने प्रश्न नहीं किया कि इन शब्दों के आगे k क्यों लगाते हैं । यह भी एक प्रकार की विद्यार्थियों की अपने अध्यापक के प्रति शरणागति ही है ।

इसी प्रकार भक्त जितनी प्रभु के प्रति शरणागति करता है उसी हिसाब से ही प्रभुकृपा करते हैं । जब भक्त शतप्रतिशत शरणागत होता है तो प्रभु स्वयं भक्त का योगक्षेम करते हैं ।

वस्तुतः व्यक्ति को आनंद की प्राप्ति तभी हो सकती है यदि प्रभु के प्रति उसका सम्पूर्ण समर्पण है क्योंकि प्रभु एवं आनंद पर्यायवाची शब्द हैं जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

कुछ श्रद्धा, कुछ संशय, कुछ ध्यान, कुछ ज्ञान ।
घर का न रहा न घाट का जैसे धोबी का स्वान ।।

अब मैं आपकी सेवा में राजा इब्राहिम और उसके गुलाम के सम्पूर्ण समर्पण का एक उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ । एक बार राजा इब्राहिम ने एक गुलाम खरीदा और उसने उससे निम्नलिखित प्रश्न किये ।

प्रश्न : आप का क्या नाम है ?

उत्तर : गुलामों का कोई नाम नहीं होता है जो मालिक मेरा नाम रख देगा वही मुझे कबूल है ।

प्रश्न : आप क्या खाओगे ?

उत्तर : जो मेरा मालिक मुझे खिलाएगा ।

प्रश्न : आप क्या पहनोगे ?

उत्तर : जो मेरा मालिक मुझे पहना देगा ।

प्रश्न : आप कहाँ रहोगे ?

उत्तर : जहाँ मेरा मालिक मुझे रखेगा ।

प्रश्न : आप क्या काम करोगे ?

उत्तर : जो मेरा मालिक मुझ से करवायेगा ।

अंत में गुलाम ने कहा कि गुलाम का फर्ज़ है मालिक का हुक्म मानना ।

राजा इब्राहिम के हृदय में गुलाम की बातें सुनकर वैराग्य की भावना पैदा हो गयी । इसके बाद वे पहले फ़कीर और फिर पैग़म्बर हो गये । इसको कहते हैं सच्ची शरणागति । जैसे एक कवि ने लिखा है–

प्रभु आप की मैं शरण, निज चरण सेवा कीजिए ।
मैं कुछ भी नहीं हूँ मांगता, जो आप चाहे दीजिए ।।
सिर आँख से मंजूर है सुख दीजिए, दुःख दीजिए ।
जो हो इच्छा कीजिए, पर दूर न दर से कीजिए ।।

शरणागति के मुख्य तीन मार्ग–

1. कर्मयोग (कर्म+भक्ति=कर्मयोग) :–

कर्मयोग का अर्थ है कि परिणाम की चिन्ता छोड़कर अपने कर्म करते रहना और भूत व भविष्य की चिन्ता छोड़कर वर्तमान में जीना । अहंकार का त्याग करते हुए स्वयं को कर्त्ता मानकर साक्षी मानना ।

इसके विषय में आपकी सेवा में एक मूर्तिकार का उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ । एक मूर्तिकार मूर्ति निर्माण में अत्याधिक निपुण था और उसे अपनी मूर्ति निर्माण कला पर बड़ा अभिमान था । एक बार उसने 10 मूर्तियों का निर्माण किया और उसकी मृत्यु का समय आ गया जब यमराज उसे लेने आया तो उन मूर्तियों में वह कलाकार खड़ा था । यहाँ तक कि यमराज भी उसे नहीं पहचान सका । यमराज दुविधा में पड़ गया कि वास्तविक कलाकार जिसकी मृत्यु का समय आ गया था उसे कैसे पहचाने और लेकर जाये । यमराज ने कलाकार से कहा कि ये सारी मूर्तियां अद्‌भुत हैं परन्तु एक कमी है । इस पर कलाकर का अभिमान बोल उठा कि क्या कमी है । बस वहीं पर उसको यमराज ने पकड़ लिया और उसको लेकर चला

गया । अतः व्यक्ति को कभी भी किसी भी वस्तु का अभिमान नहीं करना चाहिए । अतः जैसे किसी ने लिखा है–

जहाँ तर्क है वहाँ नरक है ।

जहाँ समर्पण है वहाँ स्वर्ग है ।

कर्म धर्म से स्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है परन्तु मायानिवृत्ति नहीं होती है । कर्म मुख्य चार प्रकार के होते हैं । 1. कर्म, 2. विकर्म, 3. कर्मयोग (अकर्म),

4. कर्मसंन्यास

प्रत्येक कर्म का कर्त्ता मन है हमें मन यार (प्रभु) में और तन संसार में लगाना चाहिये । जैसे संत रविदास जी लिखते हैं–

हथ कार वल चित यार वल । ।

2. ज्ञानयोग :–

ज्ञानमार्ग के निम्नलिखित आठ अंग हैं–

1. विवेक – मैं आत्मा हूँ ।
2. वैराग्य – वैरागी वह व्यक्ति होता है जिसका राग चला गया हो । राग ही द्वेष का कारण है ।
3. षट्सम्पत्ति – इसके निम्नलिखित अंग हैं–
   (1) शम (मन पर नियंत्रण) – जब प्रभुकृपा होती है तभी मन पर नियंत्रण होता है ।
   (2) दम (इन्द्रियों पर नियंत्रण)
   (3) श्रद्धा (शास्त्रों या गुरु पर विश्वास)
   (4) समाधान (श्रवण+श्रद्धा+मनन)
   (5) तितिक्षा (सहनशीलता)
   (6) उपरति (संसार में अरुचि)
4. मुमुत्व – मोक्ष पाने की तीव्र इच्छा ।
5. श्रवण – तू ही ब्रह्म है ।
6. मनन – चिन्तन ।
7. निदिध्यासन – ध्यान में एकाग्रता ।

8. समाधि – शून्य में आना ।

ज्ञानी बंदरिया के बच्चे की भाँति होता है । अतः ज्ञान मार्ग में ज्ञानी का अंतःकरण तो शुद्ध हो जाता है परन्तु सम्पूर्ण समर्पण नहीं होता यह केवल प्रभुभक्ति में ही सम्भव है ।

3. भक्तियोग :–

वस्तुतः भक्ति शब्द भज धातु से बना है जिसका अर्थ है भजन अर्थात् प्रभु की निष्काम सेवा । महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में भक्ति को ''ईश्वरप्रणिधान'' योगिराज श्रीकृष्ण ने गीता में ''शरणागति'' और महर्षि दयानंद जी ने सत्यार्थप्रकाश में ''उपासना'' के नामों से पुकारा है । भक्ति के विभिन्न तत्व हैं-श्रद्धा, सत्संग, साधना और समर्पण । शरणागति के मार्ग पर चलने वाले साधक के हृदय में दुर्गुण व दुराचार स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं और सदाचार व सद्गुण का विकास भी प्रभु कृपा से स्वतः ही हो जाता है ।

ज्यों ज्यों प्रभु में प्रेम बढ़ता है त्यों-त्यों विषयों में सुख कम हो जाता है और प्रभु में प्रेम बढ़ जाता है । यही प्रेम की कसौटी है । प्रभु में जितना प्रेम बढ़ता जायेगा उसको उतना ही ज्ञान होता जायेगा और उतना ही सांसारिक विषयों में वैराग्य होकर उनमें स्वतः ही सुखानुभूति कम होने लगेगी । धीरे-धीरे प्रभु प्रेम का आनंद बढ़ेगा और फिर उसके सामने त्रिलोकी का सुख भी तुच्छ अनुभव होने लगेगा । क्योंकि अनन्य भक्ति से ही प्रभुकृपा होती है । इसके विषय में मैं आपकी सेवा में महर्षि वेदव्यास जी के जीवन की एक घटना प्रस्तुत करना चाहता हूं ।

एक दिन की बात है कि महर्षि वेदव्यास जी अकेले ही सरस्वती नदी के तट पर बड़े उदास बैठे थे । वे स्वयं ही बोल उठे–

बाल्यकाल में मैं सदाचारी रहा । वेद, गुरु, अग्नि की सेवा निष्कपट भावना एवं शुद्ध अंतःकरण से की । सदा उनकी आज्ञापालन को कर्त्तव्य समझा । वेद आदेश जनता के पास भी पहुँच जाये, इस उद्देश्य से ग्रंथ भी लिखे, परन्तु यह क्या बात है कि जीवात्मा फिर भी प्रसन्न नहीं है ?ऐसा प्रतीत होता है कि मैं अभी किसी त्रुटि के कारण कृतार्थ नहीं हुआ ।

वह अभी कह ही रहे थे कि इतने में नारद जी सामने आते दिखाई

दिये । श्रीनारद जी के आते ही महर्षि वेदव्यास जी उनसे कहने लगे–

नारद जी आप सारे देशों में शांति और आनन्द का प्रसार करते हैं । कृपया मुझे भी बताइये कि इतनी विद्या प्राप्त करने के पश्चात् भी मुझमें क्या न्यूनता है कि अपेक्षित शांति प्राप्त नहीं हुई ?

नारद जी ने इसका उत्तर दिया–

महर्षि वेद व्यास जी ! आपने अपनी ओर से तो कोई बात उठा नहीं रखी, परन्तु अभी एक न्यूनता रह गई है । उसी के कारण अभी पूरी प्रभुकृपा नहीं हुई है और अब जब तक प्रभुकृपा नहीं होती तब तक शांति कहाँ ?

प्रभुकृपा प्रभु प्रेम होने से ही होती है । इसको प्रभु के प्रति अनन्य भक्ति कहा जाता है ।

अंत में इतना ही कहना काफी है कि यही पूर्ण शरणागति है इसी को अनन्य भक्ति एवं अनन्य शरण भी कहते हैं । यही स्वयं को प्रभु के प्रति सम्पूर्ण समर्पण करना है जैसे कबीर, सूर, तुलसी, गुरुनानक, मीरा आदि प्रभु भक्तों ने प्रभु के प्रति सम्पूर्ण समर्पण कर दिया था । वस्तुतः सारे ग्रंथों का सार है कि आप मन द्वारा प्रभु के प्रति समर्पित हो जाओ तभी भगवद्प्राप्ति होगी । जैसे मीरा का प्रभुसमर्पण देखिये–

जहाँ बैठाएँ तित बैठूँ मैं, जो बेचै बिक जाऊँ ।
तेरी मेरी प्रीत पुरानी, तुझ बिन पल न रह पाऊँ ।।
मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ ।

हम देखते हैं कि आज के अधिकतर भक्तों में समर्पण की भावना नहीं है क्योंकि उनका अंतःकरण शुद्ध नहीं है । वस्तुतः दुर्भाग्यवश आज की भक्ति दूषित हो चुकी है क्योंकि इसमें निम्नलिखित मुख्य 5 दोष आ गये हैं– 1. व्यापार, 2. व्यभिचार, 3. अपराध, 4. राजनीति, 5. तांत्रिक विद्या आदि । यदि कोई भी व्यक्ति उपरलिखित दोषों को दूर करके सच्चे हृदय से प्रभु भक्ति करेगा तो उसकी ही प्रभु के प्रति सम्पूर्ण शरणागति होगी और उसे ही भगवद्प्राप्ति हो जायेगी ।

2. नमस्ते

है पसंद अपनी अपनी ख्याल अपना अपना ।
कोई फूल चुनकर लाया कोई ख़ार गुलिस्थान से ।।
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुः, विद्या, यशो बलम् ।।

जो व्यक्ति अतिथिसत्कार, प्रतिदिन वृद्धों की सेवा करता है । उसके जीवन में चार चीजें बढ़ती हैं, आयु, विद्या, यश, आत्मिक बल, मनोबल और शारीरिक बल ।

उपरोक्त सत्कार से पैरों को छूने की भी पुरानी प्रथा है और यह चरण-स्पर्श दोनों हाथों को क्रास कर दायें हाथ से दायां और बायें हाथ से बायां पैर छूना । स्वभावतः सत्कार प्राप्त करने वाला आपके सिर पर हाथ रखकर ढेरों आशीर्वाद देगा । एक अन्य प्रथा साष्टांग- दण्डवत् प्रणाम की भी है । योगगुरु स्वामी रामदेव जी अपने गुरु जी को इसी प्रकार का प्रणाम करते दिखाये गये हैं । इसके अतिरिक्त एक और भी विधि है कि घर पर पधारे मेहमान या आप किसी भी व्यक्ति को पहली बार मिलते हैं तो उसे नमस्ते कहते हैं । नमस्ते शब्द का संधिच्छेद करें तो यह बनता है नमः+ते । व्याकरण के नियमानुसार विसर्ग (:) को स् हो जाता है । नमः का अर्थ है सम्मान और ते का अर्थ है आपके प्रति । अतः नमस्ते का अर्थ हुआ कि मैं आपका सम्मान करता हूँ । नमस्ते सदा दोनों हाथ जोड़कर और हृदय के साथ लगाकर की जाती है । दोनों हाथों की अंगुलियां व हथेली जब जुड़ जाती है तो शक्ति का प्रतीक भी बन जाती है । संगठन में ही शक्ति होती है । अस्तु 'नमस्ते' सबके लिये सार्वभौम एवं सार्वकालिक अभिवादन बन जाता है ।

वस्तुतः भारतीय संस्कृति में अभिवादन के लिये नमस्ते परम्परा से ही सर्वमान्य रहा है । परन्तु इस संबंध में कई भ्रांतियाँ फैला दी गई कि यह अभिवादन किसी विशेष वर्ग का है । परन्तु यह प्राचीनतम प्रभुप्रदत्त एवं मानवमात्र के लिये है । यह शब्द छोटे-बड़े सबके लिये प्रयोग किया जाता है जैसे ऋग्वेद में लिखा है–

नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः ।
यजाम देवान् यदि शकन्वाम माज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः ।।

ऋ. 1.27.13

प्रस्तुत मंत्र में प्रभु का यह उपदेश है कि मनुष्यों को चाहिये अभिमान छोड़कर अन्नादि से सब उत्तम जनों का सत्कार करें, अर्थात् जितना धन पदार्थ आदि उत्तम बातों से अपना सामर्थ्य हो उतना उनका संग करके विद्या प्राप्त करें, परन्तु उनकी निन्दा न करें ।

जरा नमस्ते के अन्तर्भाव को समझने का प्रयास कीजिए हाथ जोड़कर आप अपने सामने वाले व्यक्ति को यह अनुभव करा रहे हैं कि मैं केवल आपके लिये आपके प्रति पूरी निष्ठा से समर्पित हूँ । इस शब्द के द्वारा दिल से दिल को छूने का भाव परिलक्षित होता है । गीता में लिखा है–

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते । **गीता 11.39**
तुम्हीं जहाँ के हो बाप-दादा,
तुम्हीं हो ब्रह्मा तुम्हीं हो यम भी,
तुम्हीं वरुण हो तुम्हीं हो अग्नि,
तुम्हीं हो चाँद और हवा तुम्हीं हो,
तुम्हें नमस्कार फिर नमस्कार फिर नमस्कार मेरे दाता,
तुम्हें नमस्कार हो हज़ारों, ख़ुद-ए-रज़्ज़ो अला तुम्हीं हो ।।

आप वायु हैं, यम हैं, अग्नि हैं, वरुण हैं, चन्द्र हैं, प्रजापति हैं प्रपितामह हैं, आपको हज़ार बार नमस्कार है फिर बारम्बार नमस्कार है ।

इतना ही नहीं प्रतिदिन प्रातः काल में आयोजित व्यायाम के कार्यक्रम में जब मातृभूमि की वंदना के श्लोकों का उच्चारण किया जाता है तो उसका आरंभ भी 'नमस्ते' शब्द से ही होता है जैसे–

नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे त्वया हिन्दुभूमे सुखं वर्धितोऽहम् ।
महामंगले पुण्यभूमे त्वदर्थे पतत्वेष कायो नमस्ते नमस्ते ।।

प्राणी को तो छोड़िए मातृभूमि को भी नमस्ते कहने की प्रथा प्रचलित थी ।

हम देखते हैं कि कुछ व्यक्ति कभी-कभी नमस्ते के स्थान पर 'नमस्कार' (नमः+कार) शब्द का प्रयोग भी करते हैं क्योंकि मैं किसको नमस्कार कर रहा हूँ उनका नाम भी बोलना पड़ेगा। जैसे–

ओ३म् नमः शिवाय।

हे प्रभु! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

प्रिय पाठकगण! मैं आपको अपने जीवन की एक घटना सुनाना चाहता हूँ। कुछ वर्ष पूर्व विश्वविख्यात वक्ता श्री सुधांशु जी महाराज का सैक्टर 20 पंचकूला (हरियाणा) में आगमन हुआ था। उनका सत्संग सुबह 8 बजे आरम्भ होना था। परन्तु किसी कारणवश वे समय पर नहीं पहुँच सके। मैं भी उनका सत्संग सुनने के लिये गया था। उसी समय मेरे एक मित्र के साथ कुछ व्यक्ति और महिलाएं आये। उन्होंने मुझे बताया कि हम ने अनेक सत्संगियों से ओ३म् नमः शिवाय का अर्थ पूछा परन्तु किसी भी सत्संगी ने हमें ओ३म् नमः शिवाय का अर्थ नहीं बताया। जबकि हमारे गुरुजी प्रतिदिन ये वाक्य बोलते हैं। मैंने मज़ाक में कहा कि यदि आपको इसका अर्थ नहीं आता तो मैं तो आपके गुरुजी का शिष्य नहीं हूँ तब मुझे कैसे आ सकता है?परन्तु श्री सुधांशु महाराज के शिष्यों ने उत्तर दिया कि कृपया आप हमें इसके अर्थ बताएं। इसके पश्चात् मैंने उन्हें उत्तर दिया कि इसका अर्थ है हे प्रभु! हम आपको नमस्कार (प्रणाम) करते हैं। मेरा यहाँ पर यह घटना वर्णन करने का तात्पर्य केवल यही है कि अधिकांश सत्संगी भी स्वाध्याय नहीं करते हैं। मेरे भाइयो! आपका जीवन तभी बदलेगा यदि आप पहले सद्ग्रंथों का स्वाध्याय करेंगे और इसके पश्चात् जो स्वाध्याय किया उसे आचरण में लाओगे क्योंकि जीवन में इल्म व अमल दोनों ही परमावश्यक हैं।

वस्तुतः ''नमस्ते'' स्वयं में पूर्ण अर्थ प्रकट करने वाला छोटा वाक्य है क्योंकि इसमें ''ते'' से अभिप्राय आपके सम्मुख खड़ा हुआ व्यक्ति ही तो है। किसी का नाम लेने की आवश्यकता ही नहीं है। इससे तो दिल से दिल को राह की कहावत सिद्ध होती है। यहाँ तक कि संस्कृत के महाकवियों व नाटककारों ने अपनी रचनाओं में नमस्ते शब्द का ही प्रयोग किया है।

हम देखते हैं कि अभिवादन के लिए कुछ अन्य पदों का भी प्रयोग होता है जैसे राम-राम, जय श्रीराम, राधे-श्याम, जय श्रीकृष्ण आदि राम-राम बलात धर्मान्तरण करने वाले मदान्ध यवनों का मुकाबला करने के लिये हिन्दुओं ने द्विरुक्ति के रूप में अभिवादन-प्रत्याभिवादन के रूप में प्रयोग किया। श्रीराम, श्रीकृष्ण तो धार्मिक जयघोष के रूप में देखने चाहिएँ। इसी प्रकार जब हमारे सिख भाई मिलते हैं तो सतश्रीअकाल, जो बोले सो निहाल से अभिवादन करते हैं। हमारे नेता व सैनिक भाई 'जयहिन्द' शब्द का प्रयोग करते हैं। हमारे मुसलमान भाई सलामवलेकम (ख़ुदा आप पर मेहर करे) और वालेकमसलाम (ख़ुदा आप पर भी मेहर करे) करके एक दूसरे व्यक्ति का अभिवादन करते हैं। इसी प्रकार अंग्रेज़ भी जब पहली बार मिलते हैं तो Good morning कहकर अभिवादन करते हैं और रात को सोते समय Good night कहते हैं। यदि कोई व्यक्ति लम्बे समय के लिये बाहर जा रहा हो तो Good bye कहकर पुकारते हैं।

चारों वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रंथों आदि में भी नमस्ते शब्द का प्रयोग किया गया है जैसेकि यजुर्वेद में लिखा है–

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शंकराय च।
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।।

यजु. 16.41

नमस्कार कल्याण स्वरूपम् नमस्कार हो प्रभु अनुपम।
नमस्कार सुखों के दाता, नमस्कार हो ईश विधाता।
नमस्कार हो शांति भंडारा, नमस्कार सौ-सौ बार हमारा।।

जो सुखस्वरूप संसार के उत्तम सुखों का देने वाला, कल्याणकर्त्ता, मोक्षस्वरूप, धर्मयुक्त कामों को करने वाला अपने भक्तों को सुख देने वाला और धर्म-कामों में युक्त करने वाला अत्यंत मंगलस्वरूप और धार्मिक मनुष्यों को मोक्ष सुख देने हारा है, उसको हमारा बारम्बार नमस्कार है। वस्तुतः यजुर्वेद का 16वां अध्याय तो सारा नमस्ते शब्द से भरा पड़ा है। जैसे यजुर्वेद में लिखा है–

नमस्तेऽअस्तु विद्यते नमस्ते स्तनयित्नवे ।

नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ।। **36.21**

हे अनन्त ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर ! जिस कारण आप हमारे लिये सुख देने के अर्थ सम्यक चेष्टा करते हैं इससे बिजली के समान अभिव्याप्त आपके लिये नमस्कार हो अधिकतर गर्जने वाले विद्युत् के तुल्य दुष्टों को भय देने वाले आपके लिये निरंतर नमस्कार हो ।

इसी प्रकार अथर्ववेद में भी लिखा है–

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।

यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ।। **11.4.1**

जिसके आद्यान यह सब जगत् है उस प्राण के लिये मेरा नमस्कार है । वह प्राण सबका ईश्वर है और उसमें सब जगत् रहा है ।

नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे ।

नमस्ते प्राण विद्यते नमस्ते प्राण वर्षते ।। **11.4.2**

हे प्राण ! गर्जना करने वाले तुझको नमस्कार है । मेघों में नाद करने वाले तुमको नमस्कार है और हे प्राण ! वृष्टि करने वाले तुझको नमस्कार है ।

आइये अब हम पुराणों में देखें कि उन में भी कहाँ-कहाँ नमस्ते शब्द का प्रयोग हुआ है । जैसे लिंग पुराण में लिखा है–

देव-देव जगन्नाथ नमस्ते भुवनेश्वर ।

जीवच्छाद्धं महादेव प्रसादेन विनिर्मितम् । **3.27.7**

हे सारे संसार के स्वामी महादेव ! कृपापूर्वक तुम ने जीवित श्रद्धा का निर्माण किया है । इसलिये तुम्हें नमस्ते हो ।

इसी प्रकार शिवपुराण में भी लिखा है–

वीरिणीसम्भवां दृष्ट्वा, दक्षस्तां जगदम्बिकाम् ।

नमस्कृत्य करौ बद्ध्वा, बहु तुष्टाव भक्तितः ।। **2.14.27**

दक्ष ने अपनी स्त्री वीरिणी से उत्पन्न जगत् की माता उस सती को देखकर दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते करके भक्ति से उसकी स्तुति की ।

अंततः इतना कहना ही काफी होगा कि संसार में विभिन्न जातियों का अभिवादन करने का ढंग अलग-अलग है । चाहे कोई भी व्यक्ति अभिवादन

का कोई भी ढंग अपनाता है इसमें कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता है। मुख्य बात तो भावना की होती है कि आप जिस व्यक्ति का अभिवादन कर रहे हो आपके हृदय में उसके प्रति कितना सम्मान है। चाहे कोई व्यक्ति अपनी इच्छा से किसी भी ढंग से अपने मिलने वाले व्यक्ति का अभिवादन करे यह उसकी इच्छा पर आधारित है। परन्तु जैसे संसार के पुस्तकालय में सर्वश्रेष्ठ पुस्तक वेद है उसी प्रकार नमस्ते भी सर्वश्रेष्ठ एवं वेदानुकूल अभिवादन है। परिणामतः नमस्ते शब्द ठीक व प्रामाणिक है और इसी का बोलचाल की भाषा में प्रयोग होना चाहिये। अतः जब हम किसी व्यक्ति से मिलें हमें चाहिये नमस्ते से ही उसका अभिवादन करें।

3. कामना

अंगं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ।।

–आदि शंकराचार्य (भजगोविन्दम् श्लोक 15)

संसार के भोग भोगते मानव के अंग गल जाते हैं । बाल सफेद पड़ जाते हैं । चाँद सा मुखड़ा पापड़ का टुकड़ा बन जाता है । बुढ़ापे में कमजोरी के कारण लाठी टेक-टेक कर चलना पड़ता है । परन्तु इच्छाएं फिर भी पूरी नहीं होती । हम बूढ़े हो जाते हैं परन्तु इच्छा सदा युवा बनी रहती है ।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।
कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ।।

-भर्तृहरि (वैराग्य शतकम् श्लोक 12)

हम सांसारिक भोगों का उपभोग नहीं कर पाये अपितु उनकी प्राप्ति करने की दुश्चिन्ता से हम ही ग्रसे गये । हमने तप नहीं किया प्रत्युत् आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रिविध ताप हमें ही संतप्त करते रहे । नाना प्रकार के भोगों को भोगते हुए हम काल को नहीं काट पाये । परन्तु हम स्वयं काल कवलित हो गये । इस प्रकार तृष्णा बूढ़ी नहीं हुई परन्तु हम बूढ़े हो गये ।

संसार का प्रत्येक व्यक्ति सुख चाहता है और उसकी प्राप्ति के लिये चिन्तन करता है फिर चिन्तन से आसक्ति उत्पन्न होती है और आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है । वस्तुतः माँ कामना है और इसके दो पुत्र हैं पहला क्रोध और दूसरा लोभ । जब कामना पूरी नहीं होती तो क्रोध उत्पन्न होता है और जब पूरी हो जाती है तो लोभ उत्पन्न होता है । परन्तु संसार के सारे सुख क्षणिक, क्षणभंगुर और परिवर्तनशील हैं और इनके साथ दुःख भी जुड़े हुये हैं । वस्तुतः सच्चा सुख या आनंद प्रभु ही है । आनंद और प्रभु में कोई भी अंतर नहीं है अपितु प्रभु आनंद का पर्यायवाची शब्द है । हम देखते हैं कि निम्नलिखित चार चीजों की कभी पूर्ति नहीं होती ।

1. मौत का मुँह कभी भी नहीं भरता क्योंकि जो व्यक्ति पैदा होता है उसकी मृत्यु अनिवार्य है। इसमें कोई भी व्यक्ति अपवाद नहीं है। इसलिये एक उर्दूशायर ने लिखा है–

ज़िन्दगी एक किराये का घर है, इक न इक दिन बदलना होगा।
मौत जब तुमको आवाज़ देगी, घर से बाहर निकलना होगा।।
खाक मिट्टी का हर इन्सान है, बाद मरने पर होना यही है।
या जमीं पर तो लतपत बनेगी, या चिता पर जलना होगा।।

2. सागर भी कभी नहीं भरता क्योंकि इसकी गहराई और स्थान असीमित होते हैं। दूसरे इसका पानी पृथ्वी में समाता रहता है।

3. मानव का पेट भी सदा के लिए नहीं भरता है। थोड़ी देर के लिये भर जाता है और फिर खाली हो जाता है क्योंकि कुछ समय के पश्चात् भोजन, दूध, फल, चाय, पानी आदि की इसे आवश्यकता पड़ती है। इन वस्तुओं के अभाव में शरीर चल नहीं सकता।

4. मानव की इच्छाएँ कभी भी पूरी नहीं होती क्योंकि एक इच्छा पूरी होती है तो अनेक इच्छाएँ पैदा हो जाती हैं। इसके विपरीत यदि हम एक इच्छा पर नियंत्रण कर लेते हैं तो अनेक इच्छाएँ भाग जाती हैं। जैसे नत्था सिंह जी 'निर्दोष' लिखते हैं–

आसां कदे बंदे दियां हुंदिया न पूरियां।
कलपदा बथेरा फिर भी रैहंदिया अधूरियां।
'नत्थासिंह' सब्र संतोष नाल जी लै तू
रूखी मिसी खाके ते ठंडा पानी पी लै तूं।।

एक उर्दूशायर ने कितना सुन्दर लिखा है–

जो भी जिसे समझा बेहतर बना दिया।
मुझको फ़क़ीर तुझको तवग़र बना दिया।।
नादाँ-मकाम रश्क नहीं जय शुकर है।
सौ से बुरा एक से बेहतर बना दिया।।

इसी प्रकार एक उर्दूशायर के शब्दों में–

दफ़नाना देखभाल के हसरत भरे की लाश ।

लिपटी हुई कफ़न में कहीं कोई आरजू न हो ।।

अब प्रश्न पैदा होता है कि आवश्यकताएं और इच्छाओं में क्या अंतर है । आवश्यकताएं शरीर की होती हैं जैसे रोटी, कपड़ा, मकान आदि जिनके अभाव से शरीर चल नहीं सकता है । इसके विपरीत इच्छाएँ मन की होती है जोकि अनन्त होने के कारण कभी पूरी नहीं होती हैं । परन्तु आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं क्योंकि वे सीमित होती हैं । यदि इच्छा पूरी नहीं होती है तो व्यक्ति व्याकुल हो उठता है । जैसे जयशंकर प्रसाद अपने महाकाव्य ''कामायनी'' में लिखते हैं–

कर्म चक्र-सा घूम रहा है,

यह गोलक बन नियति प्रेरणा ।

सबके पीछे लगी हुई है,

कोई व्याकुल नई एषणा ।।

श्रद्धा मनु को कर्मलोक का परिचय देती हुई कहती है कि यह गोल आकार वाला कर्मलोक नियति की इच्छानुसार कर्मचक्र के अनुसार घूम रहा है और लोक के सभी प्राणी किसी न किसी नवीन इच्छा के कारण व्याकुल है । जैसे कि महात्मा बुद्ध ने भी कहा है–

We are unhappy due to foolish desires which can never be fulfilled.

हम मुख्य इच्छाओं के कारण दुःखी हैं जोकि कभी भी पूरी नहीं होती हैं ।

हमारी इच्छा क्यों पूरी नहीं होती इसका उत्तर भी जयशंकर प्रसाद अपने महाकाव्य ''कामायनी'' में देते हैं–

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है

इच्छा क्यों पूरी क्यों मन की ।

एक दूसरे से न मिल सके

यह विडम्बना है जीवन की ।।

श्रद्धा मनु से कहती है कि जब ज्ञान और कर्म में सामंजस्य नहीं है तब मनकी इच्छा किस प्रकार पूर्ण हो सकती है। अर्थात् यदि कर्म ज्ञान के अनुसार नहीं होगा तो सफलता का मिलना असंभव है।

सच तो यह है कि ज्ञान, कर्म और इच्छा में समन्वय होने पर ही जीवन में समरसता सिद्ध हो सकती है और इन तीनों का एक दूसरे से न मिलना ही जीवन का दुर्भाग्य है क्योंकि पहले वस्तु का ज्ञान होता है फिर उसके संबंध में इच्छा उत्पन्न होती है। इसके पश्चात् इच्छा की पूर्ति के लिये मानव कर्म करता है। इसके सामंजस्य में ही जीवन का वास्तविक सुख निहित है। केवल इच्छा पंगु है उसे कर्म का सहारा चाहिये। केवल कर्म अंधा है उसको ज्ञान का प्रकाश चाहिये।

हम देखते हैं कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति की अलग-अलग कामनाएं होती हैं। कामना के बिना कोई भी व्यक्ति नहीं हो सकता है। जड़वस्तु की कोई कामना नहीं होती है। इच्छा नैतिक कामना को कहते हैं और एषणा अनैतिक कामना को कहते हैं। जितनी कामनाएं अधिक होंगी उतनी ही अधिक चिन्ताएं होंगी और जितनी कामनाएं कम हों उतना ही अधिक संतोष व शांति होगी। जैसे गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं–

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमाँश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति।। 2.71
जो इन्साँ करे ख़्वाइशे दिल से दूर,
हवस का न हो जिसे दिल में फ़तूर।
न उसमें ख़ुदी (अहंकार) हो न हो मेर-तेर
सकूँ उसको हासिल है दिल उसका सेर (तृप्त)।।

जो पुरुष सब कामनाओं को त्याग देता है, निस्पृह होकर लालसा से रहित होकर, ममता से रहित होकर, निरहंकार होकर, अहंकार की, मैं की भावना को छोड़कर विचरता है वह शांति को प्राप्त होता है। यदि व्यक्ति सभी कामनाएं छोड़ दे तो देवता बन जाये परन्तु यह सम्भव नहीं है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की निम्नलिखित 5 ज्ञानेन्द्रियां होती है और 5 ही कामनाएं होती हैं–

1. देखने की कामना :– संसार का प्रत्येक व्यक्ति सूरदास के अतिरिक्त कुछ न कुछ देखना चाहता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को प्रभु ने नेत्र दिये हैं। अतः वह नेत्रों से खेल, तमाशा, सिनेमा, पर्वत, सरोवर, तीर्थस्थान आदि की सुन्दरता को देखकर जो सुख प्राप्त करता है वह रूप का सुख है। संसार में आँखें देखने का कार्य करती हैं। अतः हम आशावादी बनें और स्वयं के अवगुण और दूसरों के गुण देखकर गुणों का खजाना बनें क्योंकि जैसी हमारी दृष्टि होती है वैसी ही सृष्टि होती है।

2. सुनने की कामना :– प्रत्येक व्यक्ति की कुछ न कुछ सुनने की कामना होती है क्योंकि प्रभु ने सुनने के लिए उसे कान दिये हैं। वस्तुतः शब्द दो प्रकार का होता है-वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक। व्याकरण, कोश, साहित्य वर्णात्मक शब्द है। खाल, तार और फूंक के तीन बाजे एवं तालिका आधा बाजा ये साढ़े तीन प्रकार के ध्वन्यात्मक शब्द हैं। व्यक्ति को सुनने से जो सुख मिलता है वह शब्द का सुख होता है। अतः कानों से हमें अच्छी बातें ही सुननी चाहियें।

3. सूंघने की कामना :– प्रत्येक व्यक्ति को नाक से इतर, तेल, फल, फूल आदि की सुगंध से और प्याज, लहसुन की दुर्गंध से जो सूंघने का सुख मिलता है वह गंध की अनुभूति है। अतः नाक से सुगंध ही सूंघे न कि दुर्गंध।

4. चखने की कामना :– मीठा, खट्टा, नमकीन, कड़वा, तीखा, कसैला इन छः रसों से जो सुख हमें मिलता है वह रसानुभूति है। हमें जीभ से स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्यवर्धक पदार्थों का सेवन करना चाहिये ताकि हमारा स्वास्थ्य ठीक रहे। सबसे मधुर बोलना चाहिये ताकि हम लड़ाई झगड़ों से बचे रहें क्योंकि संसार में लगभग 90 प्रतिशत झगड़ों का कारण कटुवचन ही होते हैं।

5. स्पर्श की कामना :–स्त्री, पुत्र, मित्र, ठण्डा, गर्म आदि के स्पर्श से जो सुख मिलता है वह स्पर्श की अनुभूति होती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति की किसी न किसी वस्तु और व्यक्ति को स्पर्श करने की कामना होती है। एक कामी पुरुष किसी सुन्दरी को स्पर्श करना चाहता है और एक माता अपने बच्चे को स्पर्श करना चाहती है क्योंकि ऐसा करने से अपनी प्रवृत्ति के अनुसार दोनों को ही सुख मिलता है। इसके अतिरिक्त संसार में विभिन्न व्यक्तियों की

निम्नलिखित तीन मुख्य कामनाएँ और होती हैं–

1. वित्तैषणा :– आधुनिक युग भौतिकवाद का युग है। अतः संसार के अधिकांश व्यक्ति धन कमाने की दौड़ में है। वस्तुतः अधिकांश व्यक्ति धनोपार्जन के लिये उचित एवं अनुचित तरीकों का प्रयोग भी करते हैं। वस्तुतः धन की हमारे जीवन में अत्यधिक महत्ता है क्योंकि धन शरीर को चलाने के लिये परमावश्यक है। यहाँ तक कि जीवन की आधारभूत आवश्यकताएं–रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्ति भी धन के द्वारा होती है। परन्तु व्यक्ति को गहन परिश्रम और इमानदारी से धन कमाना चाहिये और संतोष रखकर जीवन गुजारना चाहिये।

2. पुत्रैषणा :–हम देखते हैं कि अधिकांश गृहस्थियों की पुत्रप्राप्ति की प्रबल कामना होती है। विशेषतः महिलाओं में यह कामना अधिक पाई जाती है। परन्तु यह व्यक्ति के हाथ में नहीं कि उसके घर पुत्र उत्पन्न हो। यदि पुत्रियाँ हो जाये तो उन्हें भी पुत्र समान समझकर संतोष रखना चाहिये।

3. लोकैषणा :–अपनी कीर्ति की कामना व्यक्ति में कंचन व कामिनी से प्रबल होती है। विरक्त संत कंचन, कामिनी की कामना तो त्याग देते हैं जैसे महर्षि दयानंद और स्वामी विवेकानंद आदि ने किया परन्तु कीर्ति की कामना वे भी नहीं त्याग सके। जैसे कबीर लिखते हैं–

माया तजे तो क्या हुआ मान तजा न जाय।
पीर, पैग़म्बर औलिया मान सभी को खाय।।

कबीर जी के कहने का भाव यह है कि माया का परित्याग कोई बड़ी बात नहीं अपितु मान तजना बहुत कठिन है। यहाँ तक कि धर्मगुरु, अवतार और ऋषि-मुनि भी मान का परित्याग नहीं कर सके। इस लोकैषणा से ही व्यक्ति मृत्यु के उपरांत भी जीवित रहता है। जैसे कबीर, तुलसी, सूर, गुरु नानक, महर्षि दयानंद, स्वामी विवेकानंद आज भी जीवित हैं। ये सब महामानव थे और उन्होंने मानवता के कल्याण में अपना समूचा जीवन समर्पित कर दिया। जैसे बिमलिलिम लिखते हैं–

मरने के बाद भी यदि जिंदा रहना चाहते हो तो कुछ ऐसा लिखो जिसे पढ़ा जा सके या कुछ ऐसा करो जिससे लिखा जा सके।

एक अंग्रेज़ी लेखक ने लिखा है–

The Greater the man, the small his wants.

मानव जितना महान् होता है उसकी आवश्यकताएं उतनी ही कम होती हैं। जैसे–चाणक्य कितने महान थे। उनकी आवश्यकताएं थी–एक झोंपड़ी, एक चटाई, एक जनेऊ और एक कम्बल। इसके विपरीत एक अंग्रेज़ी लेखक ने यह भी लिखा है।

The Smaller the man, the greater his wants.

मानव जितना छोटा होता है उसकी आवश्यकताएं उतनी ही अधिक होती है। परन्तु आज मानव ने अपनी आवश्यकताएं और इच्छाएँ इतनी बढ़ा दी है कि वह कुमार्ग पर चल पड़ा है। इसी कारण रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, बेईमानी अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी है। इन सब बुराइयों को रोकने के लिये हमें अपनी कामनाओं पर नियंत्रण करना पड़ेगा।

कामनाएं अनन्त हैं। वेदानुसार आज सृष्टिसृजन हुए 1,96,08,53,116 वर्ष हो चुके हैं। परन्तु किसी भी व्यक्ति की सभी कामनाएं कभी भी पूरी नहीं हुई हैं।

इसके विषय में आपको महात्मा हंसराज जी के जीवन की एक घटना सुनाना चाहता हूँ। महात्मा हंसराज जी ने अपना सारा जीवन डी.ए.वी. स्कूल को दान दे दिया था। उन्होंने लगभग 25 वर्ष तक अवैतनिक मुख्याध्यापक के रूप में सेवा की। उनके बड़े भाई मुल्कराज गुजारे के लिए उन्हें 40 रुपये मासिक सहयोग के रूप में देते थे। इस प्रकार उनके घर का गुजारा चलता था। एक बार बड़े भाई किसी बात पर नाराज हो गये और उन्होंने सहायता देना बंद कर दिया। महात्मा हंसराज जी के पास केवल 6 आने थे और घर में खाने को कुछ भी नहीं था। तीन दिन इसी प्रकार व्यतीत हो गये। वे घबराकर अपने कमरे में जाकर घूमने लगे। जैसे जल के अभाव से मछली तड़पती है वैसे ही उनका हृदय तड़प रहा था। इसके बाद वे अपने कमरे में रखी पुस्तकों की अलमारी के पास पहुँच गये। उन पुस्तकों से उन्होंने गीता की पुस्तक निकाली और खोली तो गीता का निम्नलिखित श्लोक पढ़ा–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।। 2.47

तुझे काम करना है ओ मरदेकार

नहीं उसके फल पर तुझे इख़्तियार ।

किये जा अमल और न ढूंढ़ उसका फल ।

अमल कर, अमल कर, न हो बेअमल ।

तुझे केवल कर्म करने का अधिकार है परन्तु उसके फल पर तेरा कोई भी अधिकार नहीं है । अतः 'अमुक कर्म का अमुक फल अवश्य मिले' यह कामना मन में रखकर तू काम मत कर और कर्म त्याग में भी तेरा अनुराग न हो ।

महात्मा हंसराज जी ने बताया कि इन शब्दों को पढ़ते ही उनकी घबराहट दूर हो गई । ऐसा ज्ञान हुआ, जैसे सच्चा और सीधा रास्ता मिल गया हो । ऐसा अनुभव हुआ जैसे कोई सामने खड़ा हुआ कहता है–

अरे घबरा क्यों गया ?तेरा काम कर्म करना है उसके फल की चिन्ता करना नहीं । फल को प्रभु पर छोड़ दो और आगे बढ़ो ।

महात्मा हंसराज जी ने बताया कि इसके बाद फिर कभी वे डगमगाए नहीं । फिर कभी बेचैनी नहीं आई । यह है स्वाध्याय का फल ।

महात्मा हंसराज जी के जीवन की इस घटना से हमें शिक्षा लेकर अपना काम ईमानदारी से करना चाहिए और उसका परिणाम प्रभु पर छोड़ देना चाहिये क्योंकि किसी काम का परिणाम किसी भी व्यक्ति के हाथ में नहीं है । हमें अपनी कामनाओं पर ही नियंत्रण लगाना चाहिये और कामनाओं के प्रति आसक्ति भी नहीं होनी चाहिये । अधिकतर लोग इस कारण दुःखी है कि वे रहते है मिट्टी की झोंपड़ी में और स्वप्न लेते हैं महलों के । जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

छोटा सा तू है कितने अरमान है तेरे ।

मिट्टी का तू है और सोने के सामान है तेरे ।।

जिस दिन मिट्टी में मिट्टी समा जायेगी ।

न सोना काम आयेगा न चांदी काम आयेगी ।।

अन्ततः इतना ही कहना काफी होगा कि कामनाएँ सीमित रखकर जीवन में संतोष के साथ जीयें क्योंकि कामनाएँ कभी भी पूरी नहीं होती । जैसे कबीर ने कहा है–

मैं मुई न मन मुआ, मर-मर गये शरीर ।

आशा तृष्णा न मिटी, कह गये दास कबीर ।।

4. त्रैतवाद

भारतीय संस्कृति में तीन का विशेष महत्व है। हम संसार में जहाँ भी देखते हैं हमें तीन ही दिखाई देते हैं। वस्तुतः तीन के बिना कोई भी कार्य पूर्ण नहीं होता। पूर्ण हो ही नहीं सकता क्योंकि तीन पूर्णता का द्योतक है। जैसे कोई व्यक्ति बाज़ार से किसी वस्तु को लेने गया वहाँ भी हमें तीन की संस्कृति दिखाई देंगी। जैसे दुकानदार, ग्राहक और वस्तु। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति किसी स्कूल में गया, वहाँ भी तीन ही दिखाई देंगे जैसे अध्यापक, छात्र और अध्ययन का विषय। हम ऐसे ही सभी स्थानों पर घटा सकते हैं। इन तीनों में से किसी एक चीज को निकाल दीजिए तो क्या बाज़ार चलेगा। एक जगह दुकानदार नहीं है, दूसरी जगह ग्राहक नहीं है, तीसरी जगह सामान नहीं है तो बाज़ार कभी भी नहीं चलेगा। वह खुला हुआ भी बंद रहेगा क्योंकि बाज़ार को चलाने के लिये तीन चीजों की आवश्यकता है—1. दुकानदार, 2. ग्राहक और 3. सामान। तभी बाज़ार चलेगा। इसी प्रकार संसार को चलाने के लिये भी तीन वस्तुओं की आवश्यकता है वे हैं-जगदीश, जीव और जगत्। अतः त्रैतवाद के अनुसार तीन अनादि सत्ताएं है जिनका कभी भी विनाश नहीं होता है। वे हैं-परमात्मा, आत्मा और प्रकृति। इन तीनों में परमात्मा आनंदस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, अजन्मा, अनंत, अनादि सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अमर, अभय, पवित्र, सर्वेश्वर, सृष्टिकर्ता आदि गुणों से ओतप्रोत है। उसकी कोई भी मूर्ति नहीं है। इसके विपरीत जीवात्मा नित्य, अजन्मा, परिच्छिन अणु कर्मों का फल भोगने वाला, चेतन अनेक आदि गुणों के ओतप्रोत है। तीसरा तत्व प्रकृति है यह सम्पूर्ण कार्य जगत् का मूल उपादान कारण है परन्तु इसका उपादान कारण कोई नहीं है। यह त्रिगुणात्मिका है, यह प्रलयावस्था में भी रहती है। यह प्रभु से शासित है और जीवात्मा के भोग का साधन है। परमात्मा व आत्मा चेतन सत्ताएँ हैं परन्तु प्रकृति जड़ है। ये तीनों सत्ताएँ पृथक्-पृथक् हैं और प्रलयावस्था एवं सृजनावस्था में एकत्र रहते हैं। इन सत्ताओं को अज, अज और अजा, प्रेरक, भोक्ता और भोग्य नामों से भी पुकारा गया है। कुछ त्रैतवादी विद्वानों ने त्रैतवाद के विषय निम्नलिखित परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं—

1. **ईश्वर, जीव और जगत् का कारण ये तीन अनादि हैं। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप तीनों अनादि हैं।**

—महर्षिदयानंद (सत्यार्थप्रकाश सम्मुलास 8)

2. **ईश्वर, जीव और प्रकृति अपनी-अपनी सत्ता के लिए किसी के भी मुहताज नहीं है। इसीलिये ये अनादि तथा नित्य पदार्थ हैं।**

पं. लेखराम (कलियात आर्य मुसाफिरब्राह्मणग्रंथ पृ. 382)

ईश्वर और प्रकृति में सबसे अधिक अटूट सम्बन्ध यह है कि ये दोनों ही जगत् रूप कार्य के कारण हैं। इनमें ईश्वर इस कार्य का निमित्त कारण है जबकि प्रकृति उपादान कारण है अर्थात् यदि ईश्वर न बनाये तो कुछ भी नहीं बन सकता क्योंकि उसी के बनाने से बनता है किन्तु वह स्वयं जगत् रूप में परिणत नहीं होता वरन् प्रकृति को विकृत या रूपान्तरित करता है इसीलिए उसे निमित्त कारण कहा है। इसी प्रकार यदि प्रकृति न हो तो जगत् भी नहीं हो सकता क्योंकि प्रकृति के रूपान्तरित होने से ही सब जगत् बनता और बिगड़ता है इसीलिए प्रकृति को जगत् का उपादान कारण कहा गया है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि प्रकृति को उपादान कारण कहने का और ईश्वर को निमित्त कारण कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि उपादान कारण व निमित्त कारण अलग हैं अर्थात् गुण विशेषण है और प्रकृति व ईश्वर विशेष्य हैं वरन् यहाँ प्रकृति, उपादान और मूल कारण ये पर्याय हैं। इसी प्रकार ईश्वर, निमित्त कारण भी पर्याय हैं। इसी कारण प्रकृति को वैदिक वाङ्मय में अजा, त्रिगुणात्मिका मूल आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है। अन्यथा यदि प्रकृति और ईश्वर को उपादान और निमित्त कारण माना जाए और इन दोनों के संयुक्त होने से जगत् रूप कार्य की उत्पत्ति मानी जाए तो फिर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इन दोनों के परस्पर एक कार्य से सम्बन्ध स्थापित होने का क्या कारण है अर्थात् क्या प्रकृति स्वयं अपने आपको ईश्वर के समक्ष प्रस्तुत करती है कि मुझे विकृत करो या फिर ईश्वर ही प्रकृति को प्रेरित करता है?यदि प्रकृति स्वयं ही प्रस्तुत होती है तो क्यों होती है? इस प्रश्न का एक ही उत्तर है और वह यह है कि प्रकृति का स्वभाव है

विकार को प्राप्त होना किन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि वह स्वयं विकार को प्राप्त नहीं होती और न ही स्वयं ईश्वर के समक्ष उपस्थित होती है वरन् वह ईश्वरीय ईक्षण या प्रेरणा से विकार को प्राप्त होती है और क्योंकि प्रकृति व ईश्वर में आधार-आधेय सम्बन्ध होता है जो कि नित्य है इसलिए प्रकृति को ईश्वर के समक्ष प्रस्तुत होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। इसके अलावा ईश्वर सर्वव्यापक सत्ता है, जिस कारण वह प्रकृति में भी ओत-प्रोत है फिर प्रस्तुत होना या न होना दोनों ही मत सारहीन है। रहा यह प्रश्न कि ईश्वर सर्वव्यापक क्यों है?और प्रकृति उसकी प्रेरणा से कार्यरूप में क्यों परिणत होती है?ये ऐसे प्रश्न है जो अति के प्रश्न हैं अर्थात् ये प्रश्न स्वयं की सीमा को पार कर जाते हैं क्योंकि प्रश्न का आशय होता है सत्य को जानना और सत्य वह होता है जिस पर प्रश्नचिन्ह लगाना मूढ़ता का द्योतक होता है। यथा–सत्य को जानने के लिए प्रश्न किया और उस प्रश्न के उत्तर के रूप में सत्य का ज्ञान हो गया अब यदि उस पर भी प्रश्न करें कि यह सत्य क्यों है?तब इस प्रश्न को करने का अर्थ है अपनी मूढ़ता का परिचय देना। अतः निष्कर्ष रूप में ईश्वर और प्रकृति दोनों सत् हैं और दोनों ही जगत् रूप कार्य के दो पृथक् एवं स्वतंत्र कारण हैं।

हम देखते हैं कि ईश्वर ने यह जगत् जीवात्मा के भोगार्थ बनाया है अतः जीवात्मा और जगत् में भोग्य और भोक्ता का संबंध है अर्थात् जगत् भोग्य है और जीवात्मा इसका भोक्ता है। अब इस विषय को स्पष्ट रूप में समझने के लिये यह समझना भी आवश्यक है कि जीवात्मा और परमात्मा में क्या सम्बन्ध है?यह जानना इसलिए आवश्यक है क्योंकि विद्वानों का एक बड़ा वर्ग जीवात्मा और परमात्मा में अभेद मानता है। इस विचार को स्वीकार करने वालों का यह कहना है कि जीवात्मा की कोई पृथक् स्वतंत्र सत्ता नहीं है वरन् यह तो ईश्वर का ही अंश है इसलिए इनमें अभेद है। वस्तुतः उक्त विचारधारा के मूल प्रतिपादक आदि शंकराचार्य रहे हैं जिन्होंने उपनिषद् ग्रन्थों के आधार पर इस विचारधारा को प्रचारित किया। अतः सर्वप्रथम ईश्वर और

जीवात्मा के सम्बन्ध में उपनिषदों का अवलोकन करना ही उचित होगा। मुण्डक उपनिषद् में कहा है–

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः।।
(मुण्डकोपनिषद् 3.1-2)

एक ही मूल रूप अनादि कारण और कार्ययुक्त शाखारूप वृक्ष में जीवात्मा और परमात्मा विद्यमान हैं जिनमें जीव अहंकार से सम्बन्ध उत्पन्न करके राग, द्वेष के चक्कर में बंधा हुआ दुःखों की जंजीर से छूटने के अयोग्य स्वीकार करते हुए मोहग्रसित विचार करता है (कि मेरी संतान मर गई, मेरी हानि हो गई आदि)। किन्तु जब ज्ञान से अथवा योगियों के संग से शोक से रहित तथा सर्वशक्तिमान अपने से पृथक् दूसरे (परमात्मा) को जानता व उसके बनाये जगत् में उसकी महिमा को देखता है तब वह सम्पूर्ण दुःखों से छूट जाता है।

हम देखते हैं कि हमें वेदों, उपनिषदों, दर्शनों, मनुस्मृति, पुराणों आदि में त्रैतवाद के दर्शन होते हैं। जैसे वेदों में कुछ ऐसे मंत्र भी है जहाँ एकत्र ही परमात्मा, आत्मा एवं प्रकृति की सत्ता दिखाई देती है जैसे–

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरण्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।

-ऋ. 1.164.20

इस मंत्र का भाव स्पष्ट करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं–जीव, परमात्मा और जगत् का कारण, ये तीन पदार्थ अनादि और नित्य हैं। जीव और परमात्मा यथाक्रम अल्प, अनन्त, चेतन, विज्ञानवान्, सदा विलक्षण, व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त और मित्र के समान वर्तमान हैं। वैसे ही जिस अव्यक्त परमाणरूप कारण से कार्यरूप जगत् होता है वह भी नित्य और अनित्य है। समस्त जीव पाप पुण्यात्मक कार्यों को करके उनके फलों को भोगते हैं और ईश्वर एक सब ओर से व्याप्त होता हुआ न्याय से पाप पुण्य के फलों को देने से न्यायाधीश के समान देखता है।

राहुल सांकृत्यायन, श्री नारायण स्वामी, डा. हरिदत्त आदि विद्वानों ने

भी इस ऋचा का यही अर्थ स्वीकार किया है ।

आचार्य यास्क ने 'सुपर्णा' का अर्थ आत्मा और परमात्मा किया है तथा वृक्ष का अर्थ शरीर किया है । सायण ने भी यही अर्थ स्वीकार किया है ।

विद्वानों में 'सुपर्णा' के अर्थ में मतभेद नहीं है, परन्तु 'वृक्ष' के अर्थ में उनका मतैक्य नहीं है । कुछ भी हो इस ऋचा में 'वृक्ष' तत्व ईश्वर और जीव से भिन्न रूप में ही निर्दिष्ट है । वृक्ष का अर्थ शरीर करना उतना अच्छा नहीं जितना कि प्रकृति अर्थ करना । क्योंकि शरीर तो एक साधन है । जीवात्मा अपने शरीर के द्वारा ही प्रकृति का भोग करता है, अर्थात् प्रकृति के फलों को चखता है परन्तु परमेश्वर प्रकृति का भोक्ता नहीं केवल जीवात्मा को भोगते हुए देखता है । इस ऋचा में तीन तत्वों का निर्देश स्पष्ट है । वेद के निम्नलिखित मंत्र में भी त्रैतवाद के दर्शन होते हैं–

बालादेकमणीयस्कम् उतैकं नेव दृश्यते ।

ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ।। अथर्ववेद 10.8.25

इस मंत्र के प्रथम वाक्य में कहा है कि एक तत्व बाल से भी अधिक सूक्ष्म है । यह जीवात्मा है । श्वेताश्वरोपनिषद् में इस वाक्य की स्पष्ट व्याख्या करते हुए लिखा है–

बालाग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्य च ।

भागो जीवः स विज्ञेयः ।। –श्वेताश्वेतरोपनिषद् 5.9

बाल के अगले हिस्से के सौ भाग किये जावें फिर उनमें से एक-एक के सौ भाग किये जाये उतना भाग जीवात्मा के स्वरूप का है ।

वेदों में त्रैतवाद के विषय में नारायण स्वामी लिखते हैं :–

पहला मन्तव्य वेदों का त्रित्ववाद है, अर्थात् वेद ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति की नित्यता का प्रतिपादन करते हैं ।

डा. श्रीराम लिखते हैं–

वेद ने भी ईश्वर, जीव और प्रकृति को अनादि स्वीकार किया है ।

–ईश्वरसिद्धि पृ. 78

वेद में अद्वैतवाद का प्रतिपादन करने वाले आचार्य सायण के विषय में प्रो. दामोदर लिखते हैं 'सायण पूर्णरूप से अद्वैतवादी सिद्धान्त को मानते थे

क्योंकि विजयनगर साम्राज्य के संस्थापक हरिहर, बुक्क शृंगेरीपीठ के प्रबल समर्थक एवं आश्रयदाता थे। इस शृंगेरी मठ के विशेष विद्वान् विद्यातीर्थ भारतीतीर्थ तथा श्रीकण्ठाचार्य सायण के गुरु थे। इन सभी कारणों से सायण वेद भाष्य में अद्वैतवाद के पक्षाग्रह से ग्रसित रहे हैं।

वस्तुतः ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों का स्वरूप तथा परस्पर भेद, और अनादित्व वेद में वर्णित है। अतः त्रैतवाद का उद्भव भी निश्चित् रूप से वेदों से ही माना जायेगा। दर्शन के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालते हुए डा. नरेन्द्रदेव और डा. हरिदत्त शास्त्री ने लिखा है–

प्राचीन ऋग्वेदकाल से ही दर्शनों के मूल तत्वों के विषय में कुछ न कुछ संकेत हमारे साहित्य में मिलते हैं। बीज से उठते हुए अंकुरों के समान आगे चलकर ये दार्शनिक विचारधारायें क्रमशः विकसित होती गई। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक में क्रमशः विकास पाते हुए ये विचार उपनिषदों में पल्लवित हुए और वहाँ से अपने-अपने उपजीवी अंशों को लेकर विविध नामरूपों से प्रवाहित हुए।

–भारतीय दर्शन का इतिहास पृ. 24

अतः उमेश मिश्र ने लिखा है–

'वेद का अपना न कोई दर्शन है, न कोई मन्तव्य' - तर्कयुक्त नहीं है। वेदों में त्रैतदर्शन तो अति स्पष्ट है और निश्चय से यहीं से इसका उद्भव मान्य है।

–भारतीय दर्शन पृ. 37

इसी प्रकार पुराणों में श्रीमद्भगवत पुराण में त्रैतवाद के दर्शन होते हैं। जैसे पुराण में परमात्मा को जगत् का कर्ता बतलाते हुए उसे पृथ्वी आदि पांच तत्वों और जीवात्मा का आधार भी बतलाया है। सात तत्व मानने वालों के मत की व्याख्या करते हुए लिखा है, सात ही तत्व हैं। इसका अर्थ है पांच आकाशादि छठा जीवात्मा और इन दोनों का आधार परमात्मा सातवां उन पांच तत्वों से देह, इन्द्रिय और प्राण बनते हैं। जीवात्मा के लिए इस पुराण में 'पुमान्' शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर हुआ है। एक स्थान पर श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं–पूर्वजों के द्वारा निश्चित् किये गये उस सांख्य का वर्णन करूँगा जिसे जान कर पुमान् (जीवात्मा) भ्रम को छोड़ देवें। जीवात्मा को अमर बतलाते हुए कहा है–यह जीवात्मा अपने कर्मों से न जन्म लेता है न

मरता है यह सब भ्रान्तिवश व्यवहार है । जीवात्मा अमर है—लकड़ी के संयोग से जैसे अग्नि जन्म लेती हुई और समाप्त होती हुई प्रतीत होती है उसी प्रकार जीवात्मा शरीर के साथ जन्मता और मरता प्रतीत होता है । प्रकृति को त्रिगुणात्मिका बतलाते हुए इस पुराण में कहा है—सत्व, रज और तम ये प्रकृति के गुण हैं । प्रकृति को कारण और कार्यरूपा भी बतलाया गया है तथा एक स्थान पर गुणों की साम्यावस्था को प्रकृति कहा है । तीनों तत्वों के एकत्र वर्णन से इस पुराण में त्रैतवाद की पुष्टि हुई है । एक स्थान पर कहा है 'प्रकृति' इस जगत् का उपादान कारण है । इससे पृथक् पुरुष (जीवात्मा) है । इस कार्य जगत् को उत्पन्न करने वाला काल ब्रह्म नामक परमेश्वर है । ये तीन (तत्व) हैं । यहाँ त्रितयम् शब्द का स्पष्ट प्रयोग ईश्वर जीवात्मा और प्रकृति के लिए हुआ है ।

सांख्य के तत्वों के विषय में पूछते हुए उद्धव श्रीकृष्ण से कहते हैं—जो लोग 26 तत्व स्वीकार करते हैं वे ऐसा कहते हैं—जीव अनादिकाल से अविद्या से ग्रस्त होता आया है । अतः उसे आत्मज्ञान स्वतः न होने से उसे आत्मज्ञान कराने के लिए तत्वों को जानने वाले (सर्वज्ञ परमेश्वर) की आवश्यकता होती है वह उसे ज्ञान देता है । 26 तत्वों के विषय में जो प्रश्न उद्धव ने किया है उसके उत्तर में इस श्लोक में 26 तत्व श्रीकृष्ण ने इस प्रकार गिनाए हैं—कारण कार्यरूप प्रकृति के 24 तत्व, 25 जीवात्मा और छब्बीसवां ईश्वर इसप्रकार 26 तत्व स्वीकार करना चाहिए । ये तत्व सांख्यानुसार वर्णित किये गये हैं । सांख्य को मानने वाले भी प्रकृति के 24 तत्व तथा पुरुष अर्थात् जीवात्मा और परमेश्वर ये दो तत्व कुल मिलाकर 26 तत्वों का समावेश मानते हैं । इस सांख्य के मत को देकर इस प्रकरण के अन्त में कहा है—

ऋषियों ने इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार से तत्वों की गणना की है । सब का कहना उचित ही है । विद्वानों के लिए कुछ बुरा नहीं है ।

इस कथन से प्रतीत होता है कि सांख्य के 26 तत्वों का अस्तित्व भी इस ग्रंथ में स्वीकार कर लिया गया है । ये 26 तत्व ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति इन तीनों से ही संबंधित है । अतः यहाँ त्रैतवाद की विद्यमानता है । तीनों तत्वों का एकत्र वर्णन करते हुए एक श्लोक में कहा है—सत्व, रज और

तम ये प्रकृति के गुण है। इस प्रकृति को जीवात्मा के शुभाशुभ कर्मों के अनुसार परमेश्वर ने क्षुब्ध (प्रेरित) किया। ऐसा वर्णन अन्य पुराणों में भी आया है जिनमें यह बतलाया गया है कि प्रलयावस्था से सृजन की अवस्था में वह परमेश्वर प्रकृति और पुरुष को व्यापक रूप से क्षोभित करता है।

ऋग्वेद का त्रैतवाद समर्थक प्रसिद्ध मंत्र भागवत् में भी थोड़े से परिवर्तन के साथ लिखा हुआ है। जिसमें ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों का उल्लेख है। इस प्रकार के प्रकरण ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति इन तीनों को अनादि सिद्ध करते हैं। इन तीनों के अनादित्व से इस पुराण में भी त्रैतवाद की सिद्धि है।

अतः पुराणों में परमेश्वर को सर्वोपरि सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। वह एक है। प्रलयकाल में सम्पूर्ण जड़ और चेतन जगत् उसी में रहता है। सृष्टि निर्माण के समय वही प्रकृति में गति उत्पन्न करता है, अतः जगत् का वह निमित्त कारण है। प्रकृति और जीवात्मा में भी वह व्यापक बनकर रहता है। वह नित्य और अनादि है।

पुराणों में जीवात्मा का अस्तित्व प्रलयावस्था में भी स्वीकारा गया है। अतः यह एक अनादि तत्व है। प्रकृति का यह भोक्ता है। कर्मों का स्वतंत्र कर्त्ता तथा तदनुसार फल पाने वाला है। यह परमेश्वर के शासन में रहता है। पुराणों में प्रकृति को त्रिगुणात्मिका माना है यह प्रकृति कार्य जगत् का उपादान कारण है। यह परिणामी तत्व है। कारण रूप से यह कार्यरूप में परिणत होती रहती है। प्रलयावस्था में इसका सर्वथा अभाव नहीं होता अतः यह नित्य है। यह स्वयं सृजन में समर्थ नहीं है, परमेश्वर इसका सर्गकाल में प्रेरित करता ह ै ।

अधिकतर पुराणों में परमात्मा, आत्मा और प्रकृति इन तीनों का स्वतंत्र अस्तित्व है। पुराणों की दृष्टि में ये तीनों परस्पर विलक्षण तथा नित्य सत्ताएं हैं। पुराणों में सांख्य और योग के तत्वों को भी स्वीकार किया गया है। अतः त्रैतवाद दर्शन की सत्ता पुराणों में व्यापक रूप से विद्यमान है।

इसके विपरीत कुछ पौराणिक भाइयों का विचार है कि आत्मा परमात्मा

का अंश है जैसे तुलसीदास ''रामचरितमानस'' में लिखते हैं–

ईश्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।।
सो मायाबस भयउ गोसाईं।
बँध्यो कीर मरकट की नाई।। **–उत्तरकांड 116 (ख) 1.2**

आत्मा परमात्मा का अंश है और यह आत्मा अविनाशी चेतन, स्वाभाविक, निर्मल एवं सुखराशि है। परन्तु यह तोते और बंदर की भाँति स्वयं मोहमाया के जाल में बंधी हुई है। इसी प्रकार जगद्गुरु कुपालु जी महाराज लिखते हैं–

ब्रह्म या आनंद के ही अंश हैं सब प्यारे।
चाहत सब आनंद पाते जब सब ही प्यारे।।

वस्तुतः अंश (आत्मा) अपने अंशी (परमात्मा) का दास होता है। अतः उसकी ओर भागता है जैसे एक मिट्टी के ढेले को उठाकर आप हाथ से फोड़ो तो वह पृथ्वी पर ही गिरेगा क्योंकि वह पृथ्वी का अंश है।

परन्तु वैदिक सिद्धांत के अनुसार आत्मा, परमात्मा एवं प्रकृति तीनों अनादि एवं स्वतंत्र सत्ताएं है। इसे ही त्रैतवाद के नाम से पुकारा जाता है। परन्तु कुछ विद्वानों ने आत्मा को परमात्मा का अंश इसलिये कह दिया क्योंकि दोनों ही अनादि एवं चेतन है। आत्मा अल्पज्ञ और परमात्मा सर्वज्ञ है। अतः वह परमात्मा का अंश न होकर एक अनादि सत्ता हैं अतः वैदिक सिद्धांत ही सर्वमान्य है न कि पौराणिक भाइयों का सिद्धांत।

5. पुनर्जन्म

वैदिक सिद्धान्तों में पुनर्जन्मादि कुछ ऐसे गूढ दार्शनिक सिद्धान्त हैं जिन पर मत मतान्तरवादी जन समय-समय पर असहमति प्रकट करते रहे हैं और हमारे विद्वानों द्वारा इनका युक्तियुक्त उत्तर दिया जाता रहा है। परन्तु कहा गया है **लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धिः लक्षण** और प्रमाणों से वस्तु की सिद्धि होती है अगर हम शास्त्रों की गहन गवेषणा करते हैं और तर्क की कसौटी में कसते हैं तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि पुनर्जन्म की व्यवस्था है अगर इसे स्वीकार नहीं करेंगे तो बहुत सी परेशानियाँ पैदा हो जायेंगी जैसे कोई जीव निर्धन के यहाँ, कोई धनवान के यहाँ, कोई जीव पशु योनी में, कोई मनुष्य योनी में, कोई सुखी, कोई दुःखी हो रहा है ये कैसे होता है, तो पता चला कि ये कर्मव्यवस्था के आधार पर है। अगर ये पहली बार जन्म हुआ है तो कर्म कब किये और कर्म नहीं किये तो ये फल किसका मिल रहा है। इस प्रकार ये सारी कर्म की व्यवस्था अस्तव्यस्त हो जायेगी। इसलिये पुनर्जन्म की व्यवस्था हमें स्वीकार करनी ही पड़ेगी।

जन्म और मृत्यु के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जन्म और मृत्यु प्रवाह से अनादि हैं अर्थात् जीवात्मा पुनः जन्म लेता है जिसे पुनर्जन्म कहते हैं। किन्तु वर्तमान में कुछ मत और कुछ विचारक ऐसे भी हैं जो पुनर्जन्म को नहीं मानते और यह मानते हैं कि जीव का वर्तमान जीवन ही प्रथम और अन्तिम जन्म है अर्थात् न तो इस जन्म से पहले कोई जन्म था और न इस शरीर से छूटने के बाद कोई जन्म होगा। इसप्रकार की मान्यताओं का अग्रणी चार्वाक मत है जो कि जीव की किसी पृथक् स्वतन्त्र सत्ता को ही नहीं मानता और यह कहता है कि **भस्मीभूतस्यदेहस्यपुनरागमनंकुतः** इस शरीर के नष्ट होने पर किसे आना है?अर्थात् इसके बाद कोई जन्म नहीं होता है। इस मान्यता का खण्डन तो चेतन-जड़ की पृथक् सत्ता की सिद्धि से पूर्व ही कर दिया गया है कि वहाँ जो शरीर को ही आत्मा मान लिया गया है वही गलत है। इसलिए इस मान्यता का आधार ही गलत होने से आगे कुछ कहना ही संगत प्रतीत नहीं होता।

हम देखते हैं कि कुछ मत ऐसे हैं जो चेतन जीव को शरीर से भिन्न

मानते हैं और ईश्वर को भी मानते हैं । किन्तु जीव का केवल वर्तमान जन्म ही मानते हैं । और इससे भिन्न पूर्व या पश्चात् का जन्म नहीं मानते । ऐसे मतों में क़ुरान और बाइबल प्रमुख है । अतः इन मान्यताओं पर विचार करना आवश्यक है ।

पुनर्जन्म न मानने पर आपत्तियाँ

यदि क़ुरान और बाइबल की मान्यताओं को स्वीकार किया जाये तो इन मान्यताओं के मानने पर निम्नलिखित आपत्तियाँ उपस्थित होती हैं–

1. यदि जीवात्मा का वर्तमान जन्म ही प्रथम और अन्तिम जन्म माना जाये तो इसका अर्थ होगा कि जीवात्मा (रुह) को बनाया गया है क्योंकि यदि बनाया नहीं गया तो यह बताना आवश्यक है कि जन्म से पूर्व वह कहाँ था ?इस प्रश्न का क़ुरान में कोई उत्तर नहीं है जिससे यह सिद्ध होता है कि उनके अनुसार जीवात्मा को उत्पन्न किया गया है और यदि ऐसा है तो जीवात्मा सादी है और जो जन्मा है उसका अन्त भी अवश्य है क्योंकि यही सनातन सर्वमान्य और सार्वलौकिक नियम है कि जो बना है वह एक दिन अवश्य बिगड़ेगा । अतः जीवात्मा की उत्पत्ति को मानने पर इसका विनाश भी मानना पड़ेगा और जब जीव का विनाश हो जाएगा तब जन्नत या दोजख में कौन जायेगा ?

2. जीवात्मा का पुनर्जन्म न मानने पर दूसरी आपत्ति यह है कि एक ओर तो क़ुरान में ख़ुदा को रहीम अर्थात् न्यायकारी-दयालु कहा है और दूसरी ओर हम देखते हैं कि उसने किसी को अन्धा बनाकर जन्म दे दिया, किसी को अपंग बनाकर जन्म दे दिया और किसी को सब ऐश्वर्यों में जन्म दे दिया जबकि किसी को सब अभावों में जन्म दे दिया । इस प्रकार के संसार में दृष्टिगोचर होने वाले वैषम्य को देखकर और विभिन्न प्रकार की योनियों के वैषम्य को देखकर यह प्रश्न उभरना स्वाभाविक है कि यह सब वैषम्य क्यों है ?यदि ईश्वर ने अपनी इच्छा से ये विभिन्नतायें बनाई और फिर भी वह न्यायकारी और दयालु है तो फिर अन्याय और पक्षपात क्या होगा ?

इस आपत्ति का समाधान मात्र जीव के कर्मानुसार पुनर्जन्म को स्वीकार करने पर ही सम्भव है अर्थात् जीवात्मा के जैसे-जैसे पूर्वजन्मों में किए

पुण्य-पाप रूप कर्मों के आधार पर ही ईश्वर जीव को विभिन्न योनियों और शरीरों को प्रदान करता है ऐसा मानने पर ही ईश्वर को न्यायकारी कहा जा सकता है अन्यथा अकारण किसी को सुख, किसी को दुःख देने वाला मानने से ईश्वर की न्यायकारिता समाप्त हो जायेगी और जो न्यायकारी नहीं उसको ईश्वर कहना ही व्यर्थ होगा ।

3. पुनर्जन्म न मानने वाले ये मत मानते हैं कि जीव वर्तमान जन्म में ही जो पुण्य-पापकर्म करता है ईश्वर उन्हीं के आधार पर स्वर्ग या नरक देता है और इसके साथ ही यह मानते हैं कि जीव को जो जन्नत या दोजख मिलता है वह उसकी अन्तिम स्थिति होती है जिसका अभिप्राय है कि जिसे स्वर्ग मिल गया उसे सदैव के लिये ही मिल गया और जिसे नरक मिल गया वह भी सदैव के लिए मिल गया । अब इस मान्यता को मानने वालों से पूछना चाहिए कि मनुष्य पाप भी करता है और पुण्य भी करता है । इसका अर्थ हुआ कि जिसके पुण्य अधिक हुए उसके पाप सदा के लिए क्षमा हो गए और जिसने पाप कुछ अधिक कर दिए पुण्य कम किये उसके पुण्य सदा के लिए समाप्त हो गए क्योंकि जीवों का स्वर्ग और नरक से तो अवस्थान्तर होना नहीं है अन्यथा पुनर्जन्म न होने की मान्यता ही समाप्त हो जायेगी तो ऐसी व्यवस्था में 'अन्धेर नगरी चौपट राजा' वाली कहावत चरितार्थ हो जायेगी ।

इस मान्यता पर दूसरी आपत्ति यह है कि जीव जो सीमित शक्ति वाला है उसके कर्म भी सीमित होंगे तब उन सीमित कर्मों का सदैव के लिए स्वर्ग-नरक रूप असीमित फल देना यह कहकर परमेश्वर पर अन्यायकारी होने का आरोप लगाना है जो कि अनुचित है क्योंकि सीमित कर्मों का सीमित फल देना इसी को न्याय कहते हैं और सीमित कर्मों का असीमित फल देना इसी को अन्याय कहते हैं । फिर जो जितना करे उसे उतना ही फल देना यथा-जितना पाप किया उसका उतना ही दुःख रूप फल और जितना पुण्य किया है उसका उतना ही सुख रूप फल देना न्याय है और इसके विपरीत अन्याय । किन्तु यह क्या कि किसी ने 100 में 49 पाप किये और 51 पुण्य तो उसके 49 पाप क्षमा और यदि 49 पुण्य किए और 51 पाप हो गए तो उसके पुण्य समाप्त क्योंकि उनका फल तो उन्हें पुनर्जन्म न मानने से मिलना

ही नहीं है ।

4. लोकाचार में यह देखा जाता है कि जब किसी अपराधी को कारागार का दण्ड दिया जाता है तब उसके अपराध की प्रकृति को दृष्टिगत रखकर कम और अधिक समय का तथा कठोर और सरल रूप में दिया जाता है जैसे–आर्थिक अपराधी और एक हत्यारे के दण्ड का रूप भिन्न-भिन्न होता है और उन्हें अपराध का दण्ड भोगने के पश्चात् पुनः समाज में रहकर कर्म करने का अवसर दिया जाता है । किन्तु यहाँ क्या है कि 51 पुण्य करने वाला और 99 पुण्य करने वाला तथा एक भी पाप न करने वाला सब एक ही पंक्ति में खड़े हैं और इसी प्रकार 51 पाप करने वाला और 99 पाप करने वाला सब दूसरी पंक्ति में खड़े हैं जिनको किसी प्रकार से अवस्थान्तरित करना सम्भव नहीं क्योंकि अवस्थान्तर को ही पुनर्जन्म कहते हैं और पुनर्जन्म उन्हें स्वीकार नहीं । इससे यही सिद्ध होता है कि इस मान्यता को मानने वाले घोर अंधकार में भटक रहे हैं जो न परमेश्वर को जानते और न ही जीवात्मा के स्वरूप को जानते हैं ।

5. पुनर्जन्म में विश्वास न करने वालों का एक यह कहना है कि ईश्वर अपने बन्दों को दुःख या कष्ट देता है वह उनके कर्मों के आधार पर नहीं देता वरन् वह कष्ट देकर अपने भक्तों की परीक्षा करता है । अब कोई इन भोले मनुष्यों से पूछे कि तुम अज्ञानतावश ईश्वर पर अल्पज्ञता का दोषारोपण क्यों करते हो?क्योंकि परीक्षा लेने की आवश्यकता उसे पड़ती है जो अल्पज्ञ एकदेशीय और परीक्षा से अनभिज्ञ होता है किन्तु ईश्वर तो सर्वज्ञ, सर्वन्तर्यामी और सर्वव्यापक है फिर उसे परीक्षा लेने की क्या आवश्यकता है जो अन्तर्यामी होकर सब जानता है ।

6. पुनर्जन्म न मानने में सबसे बड़ा दोष यह है कि फिर जगत् में नैतिक मूल्यों का कोई औचित्य नहीं रहता क्योंकि जीव जो अच्छे कर्म करता और बुरे कर्मों से डरता है उसके पीछे उसका यही विश्वास होता है कि उसके बुरे कर्मों का उसे आगामी जन्म के रूप में बुरा फल मिलेगा इसीलिए वह बुरे कर्म करने से बचता है और अच्छे शुभ कर्मों की ओर प्रवृत्त होता है । अन्यथा इस

जन्म में यदि अच्छे कर्म करने पर उसे सुख न मिले और आगामी जन्म उसका होना नहीं तो फिर वह शुभ कर्म क्यों करे।

7. पुनर्जन्म न मानने वाले स्वर्ग और नरक में मिलने वाले जिन सुखों की बात कहते हैं वे सब सांसारिक हैं जिन्हें बिना शरीर के नहीं भोगा जा सकता जैसे–स्वर्ग में शराब की नदियाँ या दूध की नदियाँ बहती हैं, वहाँ अप्सरायें रहती हैं। इन सबको कहने का तात्पर्य है कि वे सब शरीरधारी और जड़पदार्थ हैं जिनका भोग शरीर द्वारा ही सम्भव है। अब यदि यह कहा जाये कि कब्र में पड़े मुर्दे पुनः जी उठते हैं तो यह पुनर्जन्म हो गया और यदि कहें कि केवल रुहें या जीव ही जन्नत में या दोजख में जाती हैं तब इनका भोग वे कैसे बिना शरीर के भोग सकती है?क्योंकि शराब पीने या दूध पीने की और अप्सराओं के भोग की बात शरीर द्वारा ही सम्भव है। फिर ये सारे सुख संसार में रहकर भी मनुष्य भोग सकता है क्योंकि इनमें ऐसा कुछ भी नहीं जो इस भौतिक जगत् में उपलब्ध न हो। फिर स्वर्ग और नरक की अवधारणा ही गलत हो जाने से कोई इन सबको यहीं प्राप्त करने वाला व्यक्ति इनसे प्रलोभित क्यों होगा?

8. पुनर्जन्म न मानने से यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि जितने जीव मरने के पश्चात् स्वर्ग या नरक में चले जाते हैं उतने ही परमात्मा जगत् में उत्पन्न कर देता है अन्यथा जगत् नहीं चल सकता। ऐसा मानने पर स्वर्ग और नरक में अत्यधिक भीड़ हो जायेगी क्योंकि वहाँ केवल जाना ही लगा रहेगा आना कुछ भी नहीं होगा। दूसरे परमात्मा जिस कारण से जीव बनायेगा उसका सदैव व्यय होता रहेगा और उसमें आय कुछ भी न होगी जिससे वह जीव की उत्पत्ति का कारण रूप कोष कभी न कभी अवश्य समाप्त हो जायेगा तब जगत् का प्रयोजन कुछ भी न रहेगा जिसके परिणाम- स्वरूप जगत् ही अनित्य और पुनः उत्पन्न होने वाला नहीं रहेगा और दूसरे जगत् के अभाव में प्रभु भी निकम्मा हो जायेगा जो प्रभु के स्वरूप के विरुद्ध है। इसप्रकार पुनर्जन्म न मानने वाले मत अमान्य हैं क्योंकि पुनर्जन्म के पक्ष में जो युक्तियाँ और प्रमाण उपलब्ध होते हैं उनका कोई विरोध नहीं कर सकता।

पुनर्जन्म के पक्ष में युक्तियाँ और प्रमाण

1. जीव का अनादि स्वरूप :– जन्म और मरण का सम्बन्ध जीवात्मा से होता है इसलिए सर्वप्रथम यही विचार करना उचित है कि जीवात्मा अनादि है । जीवात्मा चेतन स्वरूप होने से अनादि है क्योंकि आदि और अन्तवाला केवल कार्य होता है और कार्य में उसके कारण के गुण होते हैं । अतः यदि जीवात्मा को आदि और अन्तवाला कार्यरूप माना जाये तब इसका कारण क्या है जिसमें इसका चेतनता का गुण विद्यमान है?स्पष्ट है कि जीव का कारण प्रकृति जड़ होने से तथा उसमें चेतनता का अभाव होने से जीव का कारण नहीं हो सकती । प्रकृति के अतिरिक्त चेतन तत्त्व ब्रह्म है सो वह भी जीव का कारण हो सकती । अतः यही मान्यता सर्वमान्य है कि जीव न किसी का कार्य है और न किसी कार्य का उपादान कारण है वरन् वह अनादि है । जो अनादि और चेतन है वह कभी भी निष्क्रिय नहीं रह सकता क्योंकि निष्क्रियता और चेतनता दोनों विरोधी गुण है इसीलिए शास्त्रकारों ने ज्ञान और प्रयत्न दोनों जीवात्मा के स्वाभाविक लक्षण बताये हैं । इसी प्रयत्न गुण के कारण जीव कर्म करता है और कर्म वह होता है जिसका कोई परिणाम होता है इस रूप में जीव अपने शुभ अशुभ कर्मों के परिणामों को सुख व दुःख रूप में भोगता है । जीवात्मा जो कर्म करता है वे सब शरीर के माध्यम से ही करता है इसलिए उसका शरीर धारण करना स्वतः सिद्ध है और फिर एक शरीर में रहता हुआ जो कर्म करता है उन सबका फल वह उसी जन्म में नहीं भोग पाता इसलिए शेष बचे संचित कर्मों का भोग भोगने के लिए उसे दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है । इसी को पुनर्जन्म कहते हैं । इसी को न्यायदर्शन ने प्रेत्यभाव कहा है । जैसे :–

पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः । न्यायदर्शन 1.1-19

आत्मनित्यत्वे प्रेत्यभाव सिद्धि । न्यायदर्शन 4.1-10

मरकर फिर जन्म लेने को प्रेत्यभाव कहते हैं तथा आत्मा के नित्य होने से प्रेत्यभाव की सिद्धि होती है । इसी प्रकार जीवात्मा का चेतन होना और कर्म करना उसके पुनर्जन्म को सिद्ध करता है ।

2. ईश्वर का न्यायकारी और दयालु होना :– पुनर्जन्म का सबसे प्रबल

प्रमाण परमात्मा का न्यायकारी और दयालु होना है क्योंकि जिसने जैसा जितना बुरा कर्म किया उसे वैसा और उतना ही दण्ड देना और जिसने जैसा जितना अच्छा कर्म किया उसे वैसा और उतना ही पुरस्कार देना न्याय कहलाता है। इसी आधार पर जीवात्मा जैसा जितना पाप व पुण्य कर्मों को वर्तमान जीवन में करता है उसे वैसा ही शरीर और उतना ही सुख-दुःख रूप भोग अगले जन्म में परमेश्वर देता है यही न्याय है जोकि जीवात्मा के पुनर्जन्म द्वारा ही सम्भव है। अन्यथा जैसा कि लोक में देखते हैं कि वर्तमान जन्म में अनेक व्यक्ति जो दुराचार आदि बुरे कर्म करते हैं फिर भी सुख से रहते हैं और अनेक सदाचारी दुःखी देखे जाते हैं। तब यदि पुनर्जन्म न माने तो फिर बुरे व्यक्तियों को बुरा फल और अच्छे व्यक्तियों को अच्छा सुख रूप फल कैसे मिल सकेगा और फिर यह भी मानना पड़ेगा कि व्यक्ति को उसके बुरे कर्मों का सुख फल मिल रहा है और अच्छे व्यक्ति को अच्छे कर्मों का बुरा फल मिल रहा है तो परमेश्वर न्यायकारी ही नहीं है। ऐसा मानने के कारण ही वास्तव में समाज में दुराचार, अनाचार आदि बुरे कर्मों को बढ़ावा मिलता है और नैतिक मूल्य समाप्त होकर सम्पूर्ण समाज और सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है जिसको सब गलत मानते हैं। इसी प्रकार ईश्वर की दयालुता भी पुनर्जन्म को सिद्ध करती है क्योंकि जैसे समाज में किसी अपराधी को उसके अपराध का दण्ड उसके अपराध की प्रकृति को दृष्टिगत रखकर दिया जाता है जिसके दो उद्देश्य होते हैं एक तो अन्य अपराध करने पर रोक लगाना तथा दूसरे उससे होने वाले कष्टों से दूसरों को बचाना। ठीक इसी प्रकार ईश्वर भी पाप रूप कर्मों का दुःख रूप फल उनकी प्रकृति के आधार पर उतना ही वैसा ही देता है उससे अधिक वा न्यून नहीं और इसमें जीव के ऊपर यह दया होती है कि वह आगे पाप करने से बचता है और दूसरे उसके द्वारा किए पाप कर्मों से कष्ट भोगने से बच जाते हैं यह तभी सम्भव है जब जीव का दूसरा जन्म हो। अन्यथा परिमित पापों का अपरिमित नरक देना और परिमित पुण्यों का अपरिमित स्वर्ग देना यह अन्याय है जिसे ईश्वर पर आरोपित करना सर्वथा अनुचित है।

3. विभिन्न योनियों का वैषम्य :– जगत् में हमें सब ओर वैषम्य दिखाई पड़ता है और साथ ही जीवधारियों में मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि विभिन्न योनियाँ दृष्टिगोचर होती है जिनके भोगों अर्थात् सुख और दुःख की मात्रा में भी अत्यधिक वैषम्य दिखाई देता है जब कि सब देहों में जीवात्मा एक सा ही है यह सब मानते हैं । ऐसा मानने पर यह स्वतः सिद्ध है कि इन योनियों और सुख दुःखादि के वैषम्य का कारण उनके पूर्व जन्म में किए कर्म होते हैं जिससे पुनर्जन्म की सिद्धि होती है ।

4. प्रत्यक्षादि प्रमाणों से भी पुनर्जन्म की सिद्धि होती है :– इस विषय में प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीनों प्रमाण प्रमुख हैं जो पुनर्जन्म को सिद्ध करते हैं । प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में उन समस्त बच्चों के जीवन को प्रस्तुत किया जा सकता है जिन्हें पूर्वजन्म की स्मृति हो जाती है । हालांकि इस विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यह कहा है कि जो कोई पूर्वजन्म के वर्तमान को जानना चाहे तो भी नहीं जान सकता क्योंकि जीव का ज्ञान और स्वरूप अल्प है । यह बात ईश्वर के जानने योग्य है जीव के नहीं । इस कथन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि जीव अपने पूर्व जन्म के वृतान्त को नहीं जान सकता, यह बात सिद्धान्त रूप में सत्य है । किन्तु लोक में प्रत्येक सिद्धान्त में कुछ अपवाद भी होते हैं । दूसरे शब्दों में जो बात सब पर लागू नहीं होती और कुछ ही पर लागू होती है उसे सिद्धान्त रूप में न मानकर अपवाद रूप में माना जाता है । ठीक इसीप्रकार सिद्धान्त रूप में तो स्वामी दयानन्द का कथन सत्य है किन्तु पूर्व जन्म की घटनायें कुछ एक-दो बच्चों को स्मरण रही हैं । यह देखा और परीक्षा करके सत्य पाया गया है इसलिए यह अपवाद है । किन्तु ये अपवाद रूप घटनायें पुनर्जन्म की प्रबल समर्थक हैं ।

इसके अतिरिक्त दूसरा प्रमाण है अनुमान प्रमाण जिसमें कार्य के द्वारा कारण, कारण के द्वारा कार्य तथा दो तत्वों में व्याप्ति सम्बन्ध के आधार पर एक को प्रत्यक्ष करके दूसरे को जाना जाता है । इस त्रिविध रूप अनुमान प्रमाण से भी पुनर्जन्म सिद्ध होता है । जैसे लोक में प्रायः देखा जाता है कि बच्चा जो अभी उत्पन्न हुआ है, वह माँ के स्तनों को पीने लगता है, पशुओं के

बच्चे जल में स्वतः तैरने लगते हैं, आदि ऐसे कार्य हैं जो इनके कारण की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं । पैदा होते ही स्तनपान की जो अभिलाषा है उसका कारण उसका पूर्वजन्म में किया हुआ भोजनाभ्यास है ।

5. प्रेत्याहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात् :– मरकर पूर्वाभ्यासकृत दूध की अभिलाषा होने से (आत्मा का पुनर्जन्म सिद्ध है) क्योंकि जब प्राणी जन्म लेता है उसी समय बिना किसी की शिक्षा वा प्रेरणा के स्वयं दूध पीने लगता है । इस कार्य का कारण इस जन्म के भोजनाभ्यास को तो माना ही नहीं जा सकता क्योंकि इस जन्म में तो उसने भोजन का अभ्यास किया ही नहीं और बिना अभ्यास के प्रवृत्ति नहीं होती । अतः उस अभ्यास को जो इस जन्म के नवजात शिशु के दूध पीने की अभिलाषा का कारण है को पूर्व जन्म का ही माना जाना सम्भव है । इससे कार्य दूध पीने की अभिलाषा के आधार पर कारण पूर्व जन्म का भोजनाभ्यास का ज्ञान होता है जिसे शेषोदृष्ट अनुमान कहते हैं–

पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धनात् जातस्य हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्ते

पूर्व किये अभ्यास से बनी स्मृति के लगाव से उत्पन्न हुए (बालक) को हर्ष, भय, शोक की प्राप्ति होने से (पूर्वजन्म सिद्ध होता है) । स्तनपान की भाँति ही नवजात शिशु में हर्ष, भय, शोक आदि के लक्षण देखे जाते हैं जिनका कारण भी वर्तमान जन्म नहीं माना जा सकता वरन् इनका कारण पूर्व जन्म में इनका अभ्यास की हुई स्मृति से अनुबन्ध ही होता है जिससे जीवात्मा पुनर्जन्म सिद्ध होता है ।

6. इसके अतिरिक्त मनुष्यों में ही नहीं अपितु प्राणी मात्र में भय देखा जाता है अर्थात् शरीर विच्छेद से सब डरते हैं । यह भय भी बिना अनुभव के नहीं होता । इसको समस्त मनोवैज्ञानिक और शरीरशास्त्री स्वीकार करते हैं । तब इस मान्यता के आधार पर इस जन्म में तो मृत्यु हुई ही नहीं फिर यह भय की वृत्ति कैसे बनी ?महर्षि पतंजलि इसका समाधान प्रस्तुत करते हुए कहते हैं–

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः । योगशास्त्र 2.9

अपने संस्कारों के वशीभूत नैसर्गिक रूप से प्रवाहित होने वाला, विद्वानों के साथ-साथ मूर्खों के भी ऊपर समान रूप से सवार हुआ अभिनिवेश क्लेश कहा जाता है । स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इस सूत्र के आशय को स्पष्ट करते हुए कहा है-(स्वरसवा०) पाँचवाँ अभिनिवेश क्लेश है, जो प्राणियों को नित्य आशा होती है कि हम सदैव शरीर के साथ बने रहें अर्थात् कभी मरे नहीं सो पूर्वजन्म के अनुभव से होती है और इससे पूर्वजन्म भी सिद्ध होता है । क्योंकि छोटे-छोटे कृमि, चींटी आदि को भी मरण का भय बराबर बना रहता है इसी से इस क्लेश को अभिनिवेश कहते हैं जोकि विद्वान्, मूर्ख तथा शुद्र जन्तुओं में भी बराबर दिखाई पड़ता है ।

विभिन्न ग्रंथों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि इन में पुनर्जन्म सिद्धान्त है । इसका विवेचन इस प्रकार किया जाता है–

1. पुनर्जन्म और वेद :–

पुनर्मनः पुनरायुर्मऽआगन् पुनःप्राणः
पुनरात्मा मऽआगन् पुनच्चक्षुः पुनः श्रोत्रं मऽआगन् ।
वैश्वानरोऽअदब्धस्तनूपाऽअग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् । ।

(यजुर्वेद 4.15)

हे सर्वज्ञ ईश्वर ! जब हम जन्म लेवें तब हमको शुद्ध मन, पूर्ण आयु, आरोग्यता, प्राण, कुशलतापूर्वक जीवात्मा, उत्तम चक्षु और श्रोत्र प्राप्त हों । सब पापों के नाश करने वाले आप हमको बुरे कर्मों और सब दुःखों से पुनर्जन्म में अलग रखें ।

2. पुनर्जन्म और निरुक्त :–

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातचाहं पुनर्मृतः ।
नानायोनि सहस्राणि मयोषितानि यानि वै । ।
आहार विविधा भुक्ताः पीता नाना विधाः स्तनाः ।
मातरो विविधा दृष्टा पितरः सुहृद्स्तथा । । 14.6

मैंने अनेक बार जन्ममरण को प्राप्त होकर नाना प्रकार के हज़ारों गर्भाशयों का सेवन किया । अनेक प्रकार के भोजन किये अनेक माताओं के स्तनों का दूध पिया अनेक माता-पिता और सुहृदों को देखा है ।

3. पुनर्जन्म और योगदर्शन :–

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभिनिवेशः 2.9

हर एक प्राणियों की यह इच्छा नित्य देखने में आती है कि मैं सदैव सुखी बना रहूँ मरूं नहीं । यह इच्छा कोई भी नहीं करता कि मैं न होऊँ । ऐसी इच्छा पूर्वजन्म के अभाव में कभी नहीं हो सकती यह अभिनिवेश क्लेश कहलाता है जिसके द्वारा कृमि पर्यन्त को भी मरण का भय बराबर होता है यह व्यवहार पूर्वजन्म की सिद्धि को जनाता है ।

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्मवेदनीयः -योगदर्शन 2.12

वर्तमान और भावी जन्मों में पाने योग्य कर्म फलों का मूल अविद्यादि पंच क्लेश ही हैं ।

4. पुनर्जन्म और न्यायदर्शन :–

पुनारूपत्तिः प्रेत्यभावः -न्यायदर्शन 1.1.19

इस सूत्र के भाष्य में वात्स्यायन मुनि लिखते हैं जो उत्पन्न अर्थात् किसी शरीर को धारण करता है वह मरण अर्थात् शरीर को छोड़ के पुनरुत्पन्न दूसरे शरीर को भी अवश्य प्राप्त होता है इस प्रकार मर कर पुनर्जन्म लेने को प्रेत्याभाव कहते हैं ।

प्रेत्यहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात् -न्यायदर्शन 3.1.22

पूर्वजन्मों के कारण ही बालक में स्तनपान की अभिलाषा रहती है ।

5. पुनर्जन्म और गीता :–

गीता में भी पुनर्जन्म के कई स्थानों पर उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं जैसे–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।। -2.22
बदलता है इन्साँ लिबास-ए-कुहन (पुराने वस्त्र)
नया जामा (वस्त्र) करता है फिर जेन-ए-तन
इसी तरह कालिब (शरीर) बदलती है रूह
नये भेस में फिर निकलती है रूह ।।

जैसे व्यक्ति पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को धारण करता है वैसे ही आत्मा पुराने शरीर का त्याग करके नया शरीर धारण करती है। क्योंकि शरीर क्षणभंगुर एवं नश्वर है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। **2.23**
कटेगी न तलवार से आत्मा,
जलेगी कहाँ आग से आत्मा।
न गीली हो पानी लगाने से यह
न सूखे हवा में सुखाने से यह।।

इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती, जल गीला नहीं कर सकता एवं वायु सुखा नहीं सकती क्योंकि आत्मा, अजर, अमर और शाश्वत है।

6. Life After Death—

अंग्रेज़ भी पुनर्जन्म सिद्धांत में विश्वास रखते हैं। जैसे फीगोर नामक लेखक अपनी विश्वविख्यात पुस्तक Life After Death में लिखते हैं-

मैंने परमात्मा के पास कोई प्रार्थनापत्र नहीं भेजा कि मुझे संसार में पैदा करो। फिर मुझे अकारण ही विपदाओं में क्यों फंसा दिया। क्या कारण है कि एक को अमेरिका जैसे शिक्षित स्थान में, तो दूसरे को अफ्रीका जैसे जंगली स्थान में पैदा किया। ये सब पूर्वजन्मों में किये हुए कर्मों का फल है।

7. पुनर्जन्म और क़ुरान :–

क़ुरान में भी पुनर्जन्म सिद्धांत है जैसे क़ुरान में लिखा है–

जिस पर परमेश्वर कुपित हुआ उनमें से कुछ को वानर और सुअर बना दिया। **(5.9.4) (7.21.31)**

उपरलिखित ग्रंथों के अतिरिक्त हम प्रतिदिन समाचार पत्रों में पढ़ते हैं कि अमुक बच्चा अपने पिछले जन्म का हालचाल बताता है और जब वह बच्चा अपने पिछले जन्म स्थान पर जाता है तो वह सत्य सिद्ध होता है। किसी-किसी बच्चे को ही कुछ समय के लिये पिछला जन्म याद होता है और ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जाता है पिछले जन्म को भूलता जाता है। जैसे

''पूर्वजन्म स्मृति'' नामक पुस्तक में पिछले जन्मों की 35 घटनाओं का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार डॉ. स्टीवसन ने संसार की 600 घटनाएं एकत्रित की है जिनसे पुनर्जन्म सिद्ध होता है।

अन्ततः इतना ही कहना काफी होगा कि पुनर्जन्म होता है। परन्तु कुछ व्यक्ति ऐसा प्रश्न करते हैं कि यदि पुनर्जन्म होता है तो हमें उसका ज्ञान इस जन्म में क्यों नहीं रहता है। महर्षि दयानंद इसका उत्तर देते हैं क्योंकि जीव अल्पज्ञ है उसे तो इस जन्म की बातें याद नहीं रहती कि कुछ समय पूर्व में क्या-क्या हुआ था तो पूर्व जन्मों का कैसे याद रहेगा और यह भी परमात्मा की हम सब पर विशेषकृपा है कि हमें पूर्वजन्मों का याद नहीं रहता है नहीं तो हम पूर्वजन्मों के सुखों को याद कर-कर के ही दुःखी हो जायेंगे और उस सुख को प्राप्त करने के लिये पुनः पूर्वजन्म स्थान में पहुँचेंगे, उससे बड़ी अव्यवस्था होगी। व्यक्ति को पूर्वजन्म की बातें याद नहीं है इसीलिये वह सुखी है। नहीं तो वह पिछले जन्म के सब दुःखों को याद करते ही मर जायेगा। अतः यह ज्ञान प्रभु के जानने योग्य है व्यक्ति के लिए नहीं। हमें अपने पिछले जन्म ज्ञान नहीं है इसमें ही हमारा कल्याण है।

6. सौरमण्डल

सूरज सफर में है, चांद सितारे सफर में हैं ।
जमीन सफर में है और आसमां सफर में है । ।
तस्कीने-दिल के वास्ते है हर बेकरार ।
तस्कीने-दिल के वास्ते सारे सफर में है । ।
फिर भी यहाँ हर चीज मिलती है ।
पर तस्कीने-दिल नहीं मिलता । ।

कोई भी ग्रह एक विशाल खगोलीय पिंड होता है जो एक निश्चित् कक्ष में अपने सूर्य की परिक्रमा करता है । सूर्य हमारे सौर मण्डल का केन्द्र है जिसके चारों ओर नौ ग्रह बुध, शुक्र, मंगल, पृथ्वी, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून, प्लूटो परिक्रमा करते हैं । इनमें से प्राचीन खगोलशास्त्रियों को 6 ग्रहों का ज्ञान था जबकि 3 ग्रहों की खोज आधुनिक काल में की गई है । अधिकतर ग्रहों के उपग्रह भी होते हैं जो अपने ग्रहों की परिक्रमा करते हैं । सौरमण्डल के ग्रहों का विभाजन आंतरिक ग्रहों और बाह्य ग्रहों के रूप में किया गया है । आंतरिक ग्रह हैं-बुध, शुक्र, पृथ्वी और मंगल । आंतरिक ग्रहों का निर्माण धात्विक तत्वों एवं कठोर पाषाणों से हुआ है । इन ग्रहों का घनत्व अत्यन्त उच्च होता है । बाह्य ग्रह-बृहस्पति, शनि, यूरेनस और नेप्च्यून अत्यन्त विशाल हैं । इसका निर्माण प्रायः हाइड्रोजन या हीलियम गैस से हुआ है । यह सभी ग्रह अत्यन्त द्रुतगति से घूमते हैं । हमारे सौरमण्डल में सूर्य, नौ ग्रहों और उनके उपग्रहों के अतिरिक्त कई हज़ार क्षुद्रग्रह और भारी संख्या में पुच्छल तारे पाये जाते हैं ।

1. सूर्य :– यह गर्म गैसों का गोला है । इसके गर्भ में स्थित हाइड्रोजन गैस सदैव हीलियम गैस में परिवर्तित होती रहती है । इस प्रक्रिया के कारण सूर्य से प्रकाश व ऊर्जा का उत्सर्जन होता है । यहाँ तक कि सूर्य के प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचने में 8.18 मिनट लग जाते हैं । सूर्य पृथ्वी से लगभग 15 करोड़ कि.मी. दूरी पर स्थित हैं । सूर्य का 95 प्रतिशत हिस्सा हाइड्रोजन से निर्मित है । इसके केन्द्र में हीलियम का एक क्रोड स्थित है । इस क्रोड के चारों ओर प्रत्येक सैकेण्ड सूर्य का 40 लाख टन पदार्थ ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता

है। सूर्य में नाभिकीय संलयन प्रतिक्रिया से प्रत्येक सेकेण्ड 60 करोड़ टन हाइड्रोजन, हीलियम गैस में परिवर्तित हो जाता है। यह प्रक्रिया अगले 5 अरब वर्षों तक और चलेगी। सूर्य के क्रोड का तापमान 2 करोड़ डिग्री सेल्सियस है जबकि उसकी सतह का तापमान 6000°C है। सूर्य का व्यास 8,65,400 मील और क्षेत्रफल पृथ्वी के क्षेत्रफल का 12000 गुना है। क्योंकि सूर्य गैसों का गोला है। इसलिए अपनी धुरी पर इसके विभिन्न भागों के परिक्रमण काल भिन्न-भिन्न होते हैं। सूर्य की भूमध्यरेखा का परिक्रमणकाल 25 दिन है जबकि ध्रुवों का परिक्रमणकाल 30 होता है। सूर्य के धब्बे सूर्य की सतह पर दिखाई देने वाले काले निशान होते हैं। जहाँ सूर्य की सतह का तापमान 6000°C होता है। वहीं इन धब्बों का तापमान केवल 1500°C ही होता है। ये धब्बे 11 वर्षों के चक्र में दिखाई देते हैं और लुप्त हो जाते हैं। खगोलविदों के अनुसार सूर्य के धब्बों का संबंध पृथ्वी में मौसम परिवर्तन से हैं। यद्यपि इसके विषय में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। पृथ्वी की भाँति ही सूर्य के भी कई स्तर होते हैं। पृथ्वी से दिखाई देने वाले भाग को सूर्यमण्डल कहते हैं। सूर्यमण्डल का ऊपरी भाग जो गुलाबी गैसों से बना होता है को वर्णमंडल कहते हैं। यह सदैव एक स्थिर गति में रहता है। प्रायः वर्णमंडल से 100,000 मील लंबी ओर अग्नि निकलती है। वर्णमंडल के ऊपर एक विशाल आभामंडल होता है। इसे केवल सूर्यग्रहण के समय ही देखा जा सकता है इसे परिमण्डल कहते हैं। सूर्य से निकले हुए नाभिकीय कण पृथ्वी पर ध्रुवीय ज्योति उत्पन्न करते हैं। 1994 ई. में अमेरीकी भौतिकशास्त्रियों ने सूर्य का अध्ययन करके अनुमान लगाया कि अगले 6.5 अरब वर्षों में सूर्य की चमक वर्तमान काल से दुगुनी हो जायेगी। अत्यधिक ऊष्मा के कारण पृथ्वी पर ग्रीन हाउस गैसों का प्रभाव अत्यधिक बढ़ जायेगा, जिससे पृथ्वी पर जीवन का अन्त हो जाएगा। अंततः सूर्य वर्तमान काल के अपने आकार से 166 गुना अधिक बड़ा हो जायेगा। आठ अरब वर्ष पश्चात् सूर्य का व्यास इतना बढ़ जायेगा कि बुध और शुक्र ग्रह उसमें समा जायेंगे और पृथ्वी नष्ट हो जायेगी।

2. बुध :– बुध सौरमंडल का आंतरिक ग्रह है। बुध, सूर्य का सर्वाधिक करीबी ग्रह है। इसके वातावरण का निर्माण 98% प्रतिशत हीलियम और

2% हाइड्रोजन से हुआ है । यह अधिकतर समय सूर्य के प्रकाश के कारण पृथ्वी पर नहीं देखा जा सकता हैं किन्तु कभी-कभी यह सूर्यास्त के बाद एवं सूर्योदय के पूर्व आकाश में देखा जा सकता है । बुध, सूर्य की परिक्रमा 32 मील/प्रति सैकेण्ड की गति से करता है । इस प्रकार यह एक परिक्रमा 88 दिनों में पूरी करता है । बुध के दिन और रात काफी लम्बे होते हैं । यह अपने अक्ष पर एक परिक्रमण 59 पृथ्वी दिनों में पूरा करता है ।

3. शुक्र :– शुक्र सौरमण्डल का आंतरिक ग्रह है । इसके वायुमण्डल के मुख्य अवयव कार्बनडाईआक्साइड और नाइट्रोजन हैं जो क्रमशः 95 व 3. 5% हैं । इसके अतिरिक्त अल्पमात्रा में जल, ऑक्सीजन और सल्फर यौगिक भी पाये जाते हैं । शुक्र, पृथ्वी का सबसे करीबी ग्रह है (दूरी 42,000,000 कि.मी.) । 1962 ई. में अंतरिक्षयान 'मैरीनर 2' ने इसकी सतह का अध्ययन करके पृथ्वी पर इसके चित्र भेजे । सोवियत अंतरिक्षयान 'वेनेरा 13' शुक्र की सतह पर उतरने वाला प्रथम मानव निर्मित उपग्रह बना । शुक्र के वायुमण्डल का निर्माण घने बादलों से हुआ है । इन बादलों की ऊँचाई सतह से 28 से 37 मील तक है । इन बादलों में सल्फ्यूरिक अम्ल व जल के कण पाये जाते हैं । शुक्र के रात और दिन के तापमान में विशेष अंतर नहीं होता है । यह ग्रह सूर्य और चन्द्रमा के पश्चात् सौरमण्डल का सबसे चमकीला ग्रह है । यह पृथ्वी के लगभग बराबर आकार एवं भार का है । यह सूर्य की परिक्रमा 22 मील प्रति सेकण्ड की गति से 255 दिनों में पूरा करता है ।

4. पृथ्वी :– पृथ्वी के वायुमण्डल का निर्माण 78% नाइट्रोजन, 21% आक्सीजन, 1% जल व 0.3% आर्गन से हुआ है । पृथ्वी, सूर्य से तीसरा ग्रह है एवं सौरमण्डल का पांचवा सबसे बड़ा ग्रह है । यह सौरमण्डल का अकेला ऐसा ग्रह है जहाँ जीवन मौजूद है । अंतरिक्ष से देखने पर पृथ्वी नीले-सफेद रंग के गोले के रूप में दिखाई देती है । पृथ्वी के वायुमण्डल की सबसे भारी सतह, जिसे तापमण्डल कहते हैं, पृथ्वी की सतह के 500 कि.मी. ऊपर स्थित है । समताप मण्डल पृथ्वी की सतह से 13 कि.मी. ऊपर स्थित है । जबकि सबसे नीची सतह परिवर्तीमंडल कहलाती है । वायुमण्डल पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के साथ संयुक्त रूप से मिलकर सूर्य एवं अंतरिक्ष से आने वाले सभी हानिकारक

विकिरणों से जीवन की रक्षा करता है। पृथ्वी की आंतरिक सतह की सबसे बाहरी सतह को भूपर्पटी कहते हैं। इसकी मोटाई भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न होती है। महाद्वीपों पर इसकी मोटाई 35 कि.मी. से 60 कि.मी. तक होती है। सागर के नीचे भूपर्पटी पतली होती है जिसकी मोटाई लगभग 10 कि.मी. होती है। पृथ्वी के दूसरे स्तर को प्रावार कहते हैं जोकि सतह से 3000 कि.मी. नीचे तक स्थित होता है। प्रावार का ऊपरी भाग अर्द्धद्रव होता है और सतह से 250 कि.मी. नीचे तक स्थित होता है। भूपर्पटी तथा प्रावार के मध्य में दो पतली परत स्थलमंडल 50-100 कि.मी. मोटी तथा दुर्बलतामंडल (एस्थेनो- स्फियर) 100-400 कि.मी. मोटी होती है। यह प्रायः साइमा (सिलिका, मैग्नेशियम) की बनी होती है तथा भूपर्पटी से इसका घनत्व अधिक होता है। क्रोड, प्रावार के बाद पृथ्वी के केन्द्र में स्थित है। क्रोड के दो भेद होते हैं—बाह्य क्रोड और आंतरिक क्रोड। इसका तापमान 3000°C से 4000°C होता है तथा दाब वायुमंडलीय दाब की तुलना में 37 लाख गुना अधिक होता है। इस उच्चदाब के कारण ही क्रोड का आंतरिक भाग ठोस का गुण रखाता है। पृथ्वी की सूर्य से माध्य दूरी 9.3 करोड़ मील है। यह सूर्य की परिक्रमा 67,000 मील प्रति घंटे की रफ्तार से करती हुई एक परिक्रमा 365 दिन 5 घंटे 48 मिनट 45.51 सैकेण्ड में पूरी करती है। अपनी धुरी पर यह एक परिक्रमण 23 घंटे 56 मिनट और 4.09 सैकेण्ड में पूरी करती है। पृथ्वी पूर्णतया गोलाकार नहीं है। इसका विषुवत रेखा पर व्यास 7,927 मील और ध्रुवों पर व्यास इससे कुछ मील कम है। इसका अनुमानित द्रव्यमान 6.6 सेक्सटिलियन टन है एवं औसत घनत्व 5. 52 ग्राम प्रति घन सेमी. है। पृथ्वी का क्षेत्रफल 196,949,970 मील है जिसका 71% भाग जल है। हाल के वर्षों में वैज्ञानिकों ने खोज की है कि पृथ्वी का क्रोड पूर्णतया गोलाकार नहीं है। पृथ्वी के क्रोड के एक्स-रे चित्रों से ज्ञात होता है कि वहाँ 6-7 मील ऊँचे पर्वत एवं इतनी ही गहरी घाटियाँ मौजूद हैं। 1996 में भूगर्भशास्त्रियों ने पता लगाया कि पृथ्वी के आंतरिक पश्चात् क्रोड की घूर्णन पृथ्वी की घूर्णन गति से कुछ अधिक है।

5. चन्द्रमा :– चन्द्रमा पृथ्वी का एकमात्र प्राकृतिक उपग्रह है। इसका व्यास पृथ्वी के व्यास का एक चौथाई है। (3476 कि.मी.)। इसकी पृथ्वी से दूरी 238000 मील है। चन्द्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के छठवें भाग के बराबर है। चन्द्रमा द्वारा पृथ्वी का परिक्रमा पथ वृत्ताकार न होकर अंडाकार है। चन्द्रमा की पृथ्वी से अधिकतम दूरी 406000 कि.मी. और न्यूनतम दूरी 364000 कि.मी. है। चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा 27.3 दिनों में पूरी करता है। चन्द्रमा पर वायुमण्डल उपस्थित नहीं है क्योंकि इसका क्षीण गुरुत्वाकर्षण जल वायुमंडल के निर्माण में असमर्थ है।

6. मंगल :– मंगल के वायुमण्डल में 95% कार्बन-डाइऑक्साइड, 3% नाइट्रोजन, 2% आर्गन गैसें पाई जाती हैं। मंगल आंतरिक ग्रहों में सबसे बाहरी ग्रह है। मंगल की मिट्टी में आइरन ऑक्साइड पाया जाता है, जिसके कारण से यह ग्रह लाल रंग का दिखाई देता है। मंगल के दो उपग्रह हैं, जिनका नाम डिमॉस और फोबोस है। मंगल का एक दिन 24 घंटे 37 मिनट के बराबर होता है जोकि पृथ्वी के एक दिन के लगभग बराबर होता है किन्तु इसका वर्ष लगभग 687 दिन का होता है। मंगल अत्यंत ठंडा ग्रह है जिसका औसत तापमान 9°C से 23°C तक होता है। मंगल का वायुमण्डल अत्यंत विरल है जिसका मुख्य अवयव कार्बन डाई ऑक्साइड है जो सूर्य के हानिकारक विकिरण को रोकने में सक्षम है। मंगल पर अक्सर धूल भरी आँधियां चलती हैं। मंगल के उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव बर्फ से वर्ष भर ढके रहते हैं, जिनकी बर्फ मौसम में परिवर्तन के साथ घटती-बढ़ती है।

7. बृहस्पति :– बृहस्पति सौरमण्डल का बाह्य ग्रह है जिसके वायुमंडल का निर्माण 89% आणविक हाइड्रोजन और 11% हीलियम से हुआ है। बृहस्पति सौरमण्डल का सबसे बड़ा ग्रह है। इसका द्रव्यमान सौरमण्डल के अन्य सभी ग्रहों के कुल द्रव्यमान से 2.5 गुना अधिक है। इसका व्यास पृथ्वी के व्यास का 11 गुणा है। इसमें 1300 पृथ्वी समा सकती हैं। यह अपनी धुरी पर एक चक्कर अत्यन्त तीव्र गति से 9 घंटे 55 मिनट में पूरी करता है। यह सूर्य की एक परिक्रमा लगभग 12 वर्षों में पूरी करता है। वैज्ञानिकों के

अनुसार यह इतना विशाल ग्रह है कि तारा बन सकता था। जब इसके जन्म के समय गैस एवं धूल के बादलों ने सिकुड़कर ग्रह का निर्माण किया तो गुरुत्वाकर्षण के कारण से इसके क्रोड का तापमान अत्यधिक हो गया। किन्तु नाभिकीय संलयन प्रक्रिया आरंभ करने के लिए इसमें पर्याप्त द्रव्यमान मौजूद नहीं था। तबसे बृहस्पति लगातार ठंडा हो रहा है। इस पर भी बृहस्पति जितनी ऊष्मा सूर्य से ग्रहण करता है। उसमें से 67% अधिक ऊष्मा उत्सर्जित कर देता है।

8. शनि :– शनि के वायुमण्डल का निर्माण 89% हाइड्रोजन और 11% हीलियम से हुआ है। शनि सौरमण्डल का छटवां एवं बृहस्पति के पश्चात् सबसे विशाल ग्रह है। शनि की मुख्य पहचान उसके छल्ले हैं, जिन्हें केवल दूरबीन की सहायता से देखा जा सकता है। इसके छल्ले किसी अन्य ग्रह के छल्लों की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। बृहस्पति की ही भाँति शनि का निर्माण हाइड्रोजन, हीलियम एवं अन्य गैसों से हुआ है। शायद द्रव या धात्विक हाइड्रोजन ग्रह के घने वायुमण्डल के अंदर स्थित है और वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इसके केन्द्र में पत्थर का ठोस क्रोड स्थित है जिसकी मोटाई पृथ्वी के क्रोड से दुगुनी है। सौरमण्डल का दूसरा सबसे विशाल ग्रह होने के बावजूद इसका घनत्व सारे ग्रहों से कम है। इसका द्रव्यमान पृथ्वी के द्रव्यमान का 95 गुना है और घनत्व 0.70 ग्राम प्रति घन सेमी. है। शनि, सूर्य से जितनी ऊर्जा ग्रहण करता है। उससे 80% अधिक ऊर्जा का उत्सर्जन करता है। इसका व्यास 120660 कि.मी. है परन्तु अत्यधिक गति से अपनी धुरी पर चक्रण करने के कारण इसके ध्रुवों का व्यास 10% कम है। शनि की चक्रण गति (प्रत्येक 10 घंटे 2 मिनट में एक) उसे सभी ग्रहों में सबसे चपटा बनाती है। इसकी भूमध्य रेखा की मोटाई ध्रुवों की अपेक्षा 11000 कि.मी. अधिक है। 1980 के पूर्व अनुमानों के अनुसार शनि के छल्लों की संख्या 6 थी, किन्तु वायजर 1 अंतरिक्षयान ने जब इस ग्रह के चित्र खींचे तब इन छल्लों की कुल संख्या 1000 निकली। 1981 में वायजर 2 अंतरिक्षयान द्वारा भेजे गये चित्रों से इन छल्लों की संख्या अब एक लाख तक पहुँच चुकी है। इन छल्लों का निर्माण बर्फ के कणों से हुआ है। ये कण शक्कर के दानों

से लेकर एक मकान के आकार तक के हैं। मुख्य छल्लों के बीच के खाली स्थान को 'कैसीनी डिवीजन' कहते हैं। इसका नामकरण इटली के प्रसिद्ध खगोलशास्त्री जिआन डोर्मोनिको कैसीनी के नाम पर किया गया है। कैसीनी ने शनि के 10 में से 4 मुख्य चन्द्रमाओं की खोज की थी।

9. यूरेनस :– यूरेनस की खोज 1781 ई. में सर विलियम हर्शेल ने की थी। यह सूर्य से सातवां ग्रह है। इसकी सूर्य से दूरी 286.9 करोड़ कि.मी. है। इसका भूमध्य रेखीय व्यास 51810 कि.मी. है। यह अपनी धुरी पर 97° पर झुका हुआ है। यूरेनस के इस अप्रत्याशित झुकाव के कारण से ध्रुवीय क्षेत्रों को एक वर्ष के दौरान अधिक सूर्य की किरण मिलती है। एक यूरेनस वर्ष पृथ्वी के 84 वर्ष 4 दिनों के बराबर है। इसकी ऊपरी वायुमंडल का निर्माण हाइड्रोजन और हीलियम से हुआ है। इसके अतिरिक्त 2% मीथेन भी पाई जाती हैं वैज्ञानिकों का अनुमान है कि निचले वायुमण्डल में 50% जल है, जबकि मीथेन और अमोनिया की भी पर्याप्त मात्रा है। मीथेन की उपस्थिति के कारण से ही ग्रह का रंग हल्का हरा है। इसकी भूमध्य रेखा अपनी कक्षा के साथ 97° का कोण बनाती है, जिसके फलस्वरूप यह सूर्य की परिक्रमा करते हुए अपनी अंग प्रदक्षिणा भी करता है। यह एकमात्र ऐसा ग्रह है, जो एक ध्रुव के सामने रहता है। यूरेनस का वायुमण्डल अत्यंत ही ठंडा है। इस पर बादलों का नामोनिशान नहीं है।

10. नेप्च्यून :– 1989 ई. तक नेप्च्यून के विषय में अधिक ज्ञात नहीं था। जब नासा के अंतरिक्षयान 'वायजर 2' ने इस ग्रह का काफी पास से अवलोकन किया। यह सूर्य से लगभग 4.5 अरब कि.मी. दूर स्थित है और 164 वर्ष 292 दिनों में सूर्य की एक परिक्रमा पूर्ण करता है। नेप्च्यून सौरमंडल का आठवां ग्रह है। इसके वायुमंडल के मुख्य अवयव हाइड्रोजन और हीलियम है। इसके अतिरिक्त मीथेन और अमोनिया गैसें भी पाई जाती हैं। इसकी खोज 1846 में उस समय हुई जब खगोलविदों ने यूरेनस की कक्षा में कुछ अनियमितता पाई। वायुमण्डल में मीथेन की उपस्थिति के कारण इसका रंग हल्का नीला है। इसका वायुमण्डल अत्यंत साफ है। इसका औसत तापमान 220°C है। इसका व्यास 49.500 कि.मी. है।

11. प्लूटो :– इसके वायुमण्डल के मुख्य अवयव मीथेन और नाइट्रोजन है। यह सौर मण्डल का नवां और सबसे बाहरी ग्रह है। इसकी खोज 1930 ई. में टाम वां ने एरीज़ोना (अमेरिका) स्थित वेधशाला से की थी। यह जमी हुई गैसों का गोला है जिसका आकार चन्द्रमा के बराबर है। इसके छोटे आकार एवं अनियमित कक्षा के कारण कुछ खगोलविदों का मानना है कि यह ग्रह नहीं है। ऐसे वैज्ञानिकों का कहना है कि यह वस्तुतः क्यूपर पट्टिका में स्थित एक बड़ा धूमकेतु है। प्लूटो के एकमात्र चन्द्रमा 'चेरान' की खोज 1978 ई. में की गई। चेरान लगभग प्लूटो के आधे आकार का है। इसका व्यास 1262.4 कि.मी. है। प्लूटो का व्यास लगभग 2306.56 कि.मी. है। इसलिए इन दोनों की स्थिति ग्रह युग्म जैसी है। इस बात के भी प्रमाण उपलब्ध हैं कि प्लूटो के वायुमंडल का मुख्य अवयव मीथेन गैस है।

उपरलिखित विवेचन एवं विश्लेषण के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रभुसृष्टि अद्‌भुत, अनंत एवं अनुपम है। वैज्ञानिकों ने खोज की है कि समूचे ब्रह्माण्ड में ऐसे अनेक सौरमण्डल हैं जिनका पता अब तक उन्हें भी नहीं लगा है। अतः तुलसीदास ने सत्य ही लिखा है–

हरि अनंत हरि कथा अनंता।
कहहि सुनहिं बहुविधि सब संता।।

–रामचरितमानस (बालकांड)

शिवजी पार्वती को उपदेश देते हुए कहते हैं कि प्रभु की लीला अनंत है और उसका कोई भी पार नहीं पा सकता है। अतः सब संत उसे अपने-अपने ढंग से बहुत प्रकार से कहते सुनते हैं।

7. शिक्षा और दीक्षा

शिक्षा एवं दीक्षा सुनने में तो एक जैसे शब्द लगते हैं लेकिन दोनों में कुछ मौलिक अंतर है। हम शिक्षा के बारे में तो काफी कुछ जानते हैं लेकिन दीक्षा के संबंध में अधिकांश लोगों का चिंतन अधिक स्पष्ट नहीं है। इससे पहले कि हम शिक्षा और दीक्षा में अंतर को समझें, हमें दोनों का अर्थ समझना होगा। साधारण शब्दों में शिक्षा का अर्थ है ज्ञान। ऐसा ज्ञान जिससे मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास हो अर्थात् जो जीवन के सभी क्षेत्रों यथा सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक एवं भावनात्मक उत्थान करने में सक्षम हो। हमारी प्राचीन गुरुकुल व्यवस्था में ऋषियों-मुनियों द्वारा अपने शिष्यों को इसी की पूर्ति के लिए शिक्षा दी जाती थी लेकिन आज इसका स्वरूप बदल गया है। अब शिक्षा से तात्पर्य उस जानकारी से है जो हम पाठशाला से लेकर विश्वविद्यालय तक अनेक कक्षाओं में विभिन्न विषयों के संबंध में प्राप्त करते हैं और जिसका प्रमुख उद्देश्य है अर्थोपार्जन।

अधिक धन कमाने की लालसा से आजकल लोग अपने देश में ही नहीं विदेश में भी मंहगी शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाते हैं। विद्यालयों में हम अर्थशास्त्र, प्रबंधन, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, साहित्य आदि अनेक विषयों की शिक्षा प्राप्त करते हैं। इस दौरान हमारे शिक्षक भी समय-समय पर बदलते रहते हैं। शिक्षा से हम ऐसी कला सीखते हैं जिससे अधिक से अधिक धनार्जन करना संभव हो सके। लेकिन महापुरुषों के मतानुसार धन कमाना ही मनुष्य जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य नहीं है। उनके अनुसार एक शिक्षित व्यक्ति को गोस्वामी तुलसीदास की इस चौपाई की अर्धाली को भी नहीं भूलना चाहिए जिसमें कहा गया है–

'साधक सिद्ध सुजान'

एक सिद्ध साधक होने के बाद सुजान होने की आवश्यकता क्यों पड़ी। कारण स्पष्ट है कि यदि व्यक्ति सुजान नहीं होगा तो सिद्धियों के दुरुपयोग का भय बना रहेगा। रामायण बताती है कि रावण कितना बड़ा पराक्रमी एवं प्रकांड पंडित था जिसने वेदों पर भी भाष्य लिख डाला था, लेकिन सुजान नहीं होने के कारण अपनी बुद्धि, बल और विद्वता का दुरुपयोग कर बैठा जिसकी

परिणति लंका के सर्वनाश के रूप में हुई ।

संस्कार की शिक्षा दिए बिना अर्थात् सुजान बनाए बिना केवल शिक्षित करने का अर्थ है उसे एक चतुर शैतान बनाना । हमारे विद्यालयों में आजकल कुछ इसी प्रकार की शिक्षा दी जा रही है अर्थात् व्यक्तित्व का एकांगी विकास का ही कार्य हो रहा है । शिक्षा का साधन होता है शिक्षक जिसका संस्कारी होना आवश्यक नहीं । हमारे विचार और कर्म हमारे मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं जिन्हें संस्कार कहा जाता है और इन संस्कारों का कुल योग चरित्र कहलाता है । एक अंग्रेज़ी भाषा में कहावत है–

When money is lost, nothing is lost,
When health is lost, something is lost,
When character is lost, everything is lost.

कारण यह है कि हमारा मन, विचार एवं क्रियाएं गलत दिशा में कार्य करना आरम्भ कर देंगी । आज विश्व के कई देशों के पास इतनी बड़ी मात्रा में हाइड्रोजन एवं अणुबम उपलब्ध हैं जिससे सम्पूर्ण विश्व समुदाय का कुछ ही घंटों में विध्वंस किया जा सकता है लेकिन समझदारी और विवेक के चलते मानव सभ्यता अभी तक जीवित है ।

शिक्षक यदि सदाचारी, संस्कारी और चरित्रवान हो तो छात्रों में विषय की जानकारी के साथ-साथ संस्कारों का भी आरोपण संभव हो जाता है । दुविधा यह है कि शिक्षक समय-समय पर विषय, कक्षा और विद्यालय के अनुसार बदलते रहते हैं जिससे छात्रों पर उच्च संस्कारों का प्रभाव स्थायी रूप से नहीं पड़ पाता । साधारणतया शिक्षक का संबोधन तीन शब्दों से किया जाता है यथा शिक्षक, अध्यापक और आचार्य लेकिन तीनों में अर्थभेद है । शिक्षक वह है जो अर्जित शिक्षा को उसी रूप में शिष्यों में बाँट देता है । अध्यापक वह है जो प्राप्त शिक्षा का अध्ययन करके अध्यापन करता है तथा आचार्य वह है जो शिक्षा को अपने जीवन में उतार कर अध्यापन करता है ।

जहाँ शिक्षक, अध्यापक एवं आचार्य हमें शिक्षित करते हैं, वहीं एक गुरु हमें दीक्षित करता है । दीक्षा का अर्थ है परमात्मा से संयोग और संसार से वियोग । एक दीक्षित व्यक्ति सदा संतुष्ट और तृप्त रहता है और परमतत्व से जुड़ा रहता है । दीक्षा संतोष, पावनता देती है । दीक्षा देने वाला गुरु आजीवन

एक ही होता है । दीक्षा के द्वारा हमें संस्कार मिलते हैं । संस्कार का शाब्दिक अर्थ है परिष्कार ।.... दूसरे शब्दों में व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया में सकारात्मक चिंतन और नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों का संयोजन ही संस्कार कहलाता है । इन संस्कारों की जड़ें अतीत में रोपी जाती हैं, वर्तमान में विकास पाती हैं और भविष्य में पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होती है । शास्त्रों के अनुसार गुरु शब्द की उत्पत्ति 'गु' और 'रु' दो अक्षरों के संयोजन से हुई है । 'गु' का अर्थ होता है अंधकार और 'रु' से प्रकाश अर्थात् जो तत्व अंधकार से प्रकाश की यात्रा कराए वह गुरु कहलाता है । शास्त्र कहता है–

'निरत अज्ञान इति गुरु'

जो हमारा अज्ञान मिटाए, वही गुरु है । गुरु हमारे अहंकार पर चोट करके हमें विनम्र बनाता है । काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार जैसे शक्तिशाली शत्रुओं से लड़ने की कला सिखाता है ।

एक बार शिवाजी महाराज को यह अहंकार हो गया कि मेरी प्रजा का भरण-पोषण मैं करता हूँ । एक दिन शिवाजी गुरु समर्थ रामदास जी को एक विकास परियोजना स्थल पर ले गए जहाँ बहुत सारे मजदूर तथा अन्य तकनीकी अधिकारी कार्य कर रहे थे । शिवाजी ने अपने गुरु को बताया कि इस परियोजना के कारण सैकड़ों लोग अपना भरण-पोषण कर रहे हैं । गुरुजी शिवाजी के अहंकार को भांप गए । जिन्होंने शिवाजी से कहा कि सामने पड़े पत्थर के दो टुकड़े कर दो । शिवाजी ने जैसे ही उस पत्थर को उठाकर जोर से जमीन पर पटका तो उसके दो टुकड़े हो गये और उसमें से जल और एक मेंढक भी निकला । गुरुजी ने शिवाजी से पूछा–शिवा । जरा बताओ कि इस मेंढक का भरण-पोषण कौन कर रहा है । इतना कहते ही शिवाजी के अहंकार पर चोट लगी और वे गुरुजी के कहने का आशय समझ गए । शिवाजी ने कहा गुरुदेव ! क्षमा करें, पालनकर्ता तो प्रभु है मैं तो साधन मात्र हूँ । कहने का तात्पर्य यह है कि सद्गुरु समय-समय पर शिष्य के दोषों का शम अपने उपदेशों और आचरण के द्वारा करते रहते हैं ।

वस्तुतः जो साधन असत् से सत् की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर यात्रा कराने में दिव्य वाहन

के रूप में सहयोग करता है, वही गुरु होता है। हमारे धर्मग्रंथों में गुरु को परब्रह्म के समान बताया गया है क्योंकि वही धर्म व अध्यात्म की शिक्षा देकर जीवन को आवागमन के बंधन से मुक्त कराता है और प्रभु के द्वार तक ले जाता है। जहाँ एक पिता अपने पुत्र को लौकिक संपदा से युक्त करके अपने को धन्य समझता है, वहीं गुरु अपने शिष्य को संस्कारों और आध्यात्मिक संपदा का अकूत खजाना सौंपकर अपने ऋषिऋण से मुक्त होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा जहाँ हमें केवल लौकिक व्यवहार की शिक्षा देती है, वहीं दीक्षा हमें शिक्षा भी देती है और संस्कारित भी करती है। आज दीक्षा के नाम पर धर्म का व्यवसायीकरण हो रहा है। जिधर देखो धर्मगुरुओं की बाढ़ सी आ गई है। स्थान-स्थान पर धन लेकर दीक्षा दी जा रही है, कथाकीर्तन प्रवचन आदि किए जा रहे हैं। इस प्रक्रिया में आडम्बर और पाखण्ड भी अपनी जड़ें जमाते जा रहे हैं। ऐसे में छद्मगुरुओं से सचेत रहने की आवश्यकता भी बढ़ गई है। वेद कहता है आध्यात्मिक गुरु वही हो सकता है जो श्रौत्रिय ब्रह्मनिष्ठ हो अर्थात् जिसे वेदों- शास्त्रों का सम्पूर्ण ज्ञान हो और जो प्रभु से साक्षात्कार कर चुका हो। लेकिन जो धन और विषयभोगों के पुजारी हैं उनसे ऐसी अर्हता की अपेक्षा कैसे की जा सकती है। ऐसे गुरु स्वयं तो नरक के अधिकारी होते ही हैं साथ ही अपने अनुयायियों को भी नरकगामी बना देते हैं।

अनेक प्रकार के ज्ञान के अर्जन का सर्वश्रेष्ठ साधन शिक्षा है। शिक्षा ही है जो मानव को मानव बनाती है अन्यथा मानव एवं पशु में अंतर नहीं रह जाता। शिक्षा का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है पृथ्वी से लेकर आकाश तक के पदार्थों को प्राप्त करना विद्या कहलाता है। प्रभु अनंत है। अतः उनकी रची सृष्टि भी अनंत है। यही कारण है कि प्रत्येक राष्ट्र अपने देश की शिक्षाप्रणाली की ओर विशेष ध्यान देता है। भारत शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी देश रहा है। उसने लक्ष्मी एवं सरस्वती को समान रूप से महत्व दिया है। प्राचीन में उसकी शिक्षाप्रणाली देश एवं जाति की आवश्यकताओं के अनुरूप रही है। इस देश में नालंदा, विक्रमशिला, तक्षशिला, वल्लभी जैसे विद्याकेन्द्र विद्यमान थे। यहाँ से देश-विदेश के असंख्य छात्रों ने शिक्षा लाभ लिया।

बौद्धधर्म का प्रचार-प्रसार इस बात का प्रमाण है कि यह देश शिक्षा के क्षेत्र में सारे संसार में अग्रणी रहा। परन्तु शताब्दियों की पराधीनता ने हमारी इस आदर्श शिक्षाप्रणाली को विकृत कर दिया। विदेशी सरकारों ने अपना उल्लू सीधा करने के लिये एवं अपने राष्ट्र की मशीन को चलाने के लिये हमें पुर्जों से अधिक महत्व नहीं दिया। उन्होंने ऐसी शिक्षा प्रणाली को महत्व दिया जो उनके शासन एवं अस्तित्व को बनाए रखने में सहायक हो। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भी हम उस विकृत एवं देश के वातावरण एवं जीवन के प्रतिकूल शिक्षाप्रणाली को पूर्णतः नहीं त्याग सके।

शिक्षा व्यक्ति की सनातन आवश्यकता है। अतः जितनी महत्वपूर्ण वो वर्षों पहले थी उतनी ही महत्वपूर्ण आज है। शिक्षा के बिना मनुष्य का गुजारा न पहले था न आज है और न आगे होगा क्योंकि शास्त्रकार ने कहा है–

वंशो द्विधा विद्यया जन्मना च।

वंश एक विद्या के द्वारा और दूसरा जन्म के द्वारा होता है। जन्म के द्वारा मनुष्य का हाड़, मांस, चर्बी, रोम, मज्जा से युक्त ढांचे का निर्माण होता है। परन्तु विद्या मनुष्य को मनुष्यता सिखाती है और मोक्ष तक का मार्ग पूर्ण करती हैं।

आज तथाकथित लोगों ने शिक्षा में ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया है जिसे देखकर ये कहना पड़ता है। वर्तमान में शिक्षा की न आवश्यकता है और न महत्व है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य को देखकर मैं शिक्षा को तीन विभागों में बाँटना चाहूँगा– 1. शिक्षा, 2. कुशिक्षा, 3. सत् शिक्षा। कुशिक्षा की आवश्यकता कभी भी नहीं थी मात्र शिक्षा मनुष्य को उसके गन्तव्य तक नहीं पहुँचा सकती है परन्तु सत्शिक्षा मनुष्य को उसके गन्तव्य तक पहुँचाती है और उसकी आवश्यकता हमें करोड़ों वर्षों पहले थी, आज भी है और आगे भी रहेगी। सत्शिक्षा तो वो चीज है जिसमें सूर्य की प्रखरता है, चन्द्रमा की सौम्यता है, यज्ञ की धूमयता है, वेद की पावनता है, जल की शीतलता है, आम्रकुंजों की मादकता, माता-पिता का वात्सल्य, भाई-बहन का सौहार्द, पुत्र-पुत्रियों की मिठास, पत्नी का सद्भाव और सामंजस्य, बड़ों का आशीर्वाद है।

जिस प्रकार प्रत्येक श्रेष्ठ वस्तु के साथ खुरापाती लोग छेड़छाड़ करते हैं वैसे शिक्षा के साथ भी मानव ने किया, जिसके परिणामस्वरूप हम उसके अन्तस्थः तक नहीं पहुँच पाये। आज महर्षि दयानन्द को छोड़कर किसी व्यक्ति ने शिक्षा की ठीक परिभाषा भी नहीं की है। आज हम एजुकेशन को ही शिक्षा मानते हैं परन्तु ये बिल्कुल गलत है आप देखेंगे एजुकेशन शब्द लेटिन भाषा का है। ये दो शब्दों के मेल से बनता है। ई+डुको ई का तात्पर्य है अन्दर से बाहर की ओर, डुको का अर्थ होता है आगे बढ़ जाना। कहने का भाव यह है कि अन्दर जो भरा है उसे बाहर निकालने का नाम एजुकेशन है। अगर इस एजुकेशन को ही शिक्षा मान लिया जाये तो सोच कर देखो, अगर मेरे अन्दर चोरी के भाव हैं तो उन्हें भी बाहर निकालने का नाम शिक्षा होगा। जितनी परिभाषाएं पाश्चात्यों ने बनाई, वे कहीं न कहीं अपूर्ण सिद्ध हुई। परन्तु महर्षि दयानंद ने शिक्षा की एक निम्नलिखित पूर्ण परिभाषा दी है–

यया विद्यासभ्यता धर्मात्मा जितेन्द्रियता वर्धेरन् अविद्या असभ्यता अधर्मात्मता अजितेन्द्रियता नश्येयुः दूरीभवेयुः सा शिक्षा।

जिससे सभ्यता, विद्या, धर्मात्मा, जितेन्द्रियता बढ़े और अविद्या, असभ्यता, अधर्मात्मता, अजितेन्द्रियता का नाश हो वही शिक्षा है। इस परिभाषा वाली शिक्षा की आवश्यकता मनुष्य को सदा रही है, क्योंकि बिना सिखाये व्यक्ति चाहे 100 वर्ष का वृद्ध ही क्यों न हो जाये नहीं सीख सकता। इसलिये व्यक्ति को हर समय सीखना पड़ता है और नया-नया करने के लिए व्यक्ति के जीवन में शिक्षा का महत्व सदा से था और आगे रहेगा।

शिक्षा के तीन मुख्य उद्देश्य–

शारीरिक उन्नति, मानसिक उन्नति, आत्मिक उन्नति ये व्यक्ति के जीवन की नितान्त आवश्यकताएं हैं, इनकी पूर्ति करने वाली शिक्षा भी व्यक्ति के लिए सदा महत्वपूर्ण रहेगी। परन्तु आज परिभाषाएं बदल गई। किसी ने कहा जो बन्दूक बनाये वो ब्रह्मचारी, जो भ्रष्टाचार करे वो सदाचारी और जो परिभाषायें बनाये वो अटल बिहारी। क्योंकि धीरेन्द्र ब्रह्मचारी की काश्मीर में बन्दूकों की फैक्ट्री पकड़ी गई, दिल्ली के रामकृष्णपुरम् में स्वामी सदाचारी थे वे भ्रष्टाचार में पकड़े गए। ठीक इसी प्रकार से शिक्षा की परिभाषा बदल गई

और हम उसे शिक्षा मानने लगे जिसकी नींव 1813 ई. में चार्ट एक्ट नाम के नियम में रखी गई जिसका उद्देश्य रखते हुए लार्ड मैकाले ने ब्रिटेन के कॉमन हाउस में 20.2.1835 ई. को भाषण देते हुए कहा था–

हम नई शिक्षा नीति चलाकर एक ऐसे समुदाय का निर्माण करेंगे जो रंग रूप में भारतीय, पर आचार-विचार और रुचि में अंग्रेज़ हो ।

उस समय शिक्षापद्धति को लेकर दो सम्प्रदाय थे । पहले सर विलियम्स जॉन जो शिक्षा पद्धति को संस्कृत में चलाना चाहते थे । दूसरे थे राजाराम मोहनराय । ये शिक्षा पद्धति को अंग्रेज़ी में चलाना चाहते थे । ये कहते थे हम बैलगाड़ी के जमाने में नहीं जीना चाहते हैं अपितु मोटरकार के जमाने में जीना चाहते हैं और हम व्याकरण के तिङन्त-सुबन्त और दर्शन की गहन जटिलताओं में विद्यार्थी का समय बर्बाद नहीं करना चाहते हैं । परिणाम यह हुआ कि इस विषम परिस्थिति से गुजरते हुए जो 1813 ई. में मद्रास से यह शिक्षापद्धति चली तो इस शिक्षापद्धति ने डॉक्टर, इंजीनियर तो दिये परन्तु राष्ट्रभक्त नहीं ।

इस शिक्षा पद्धति को हमें परोसकर यह बताया गया । प्रारम्भ में हम मूर्ख थे और अंग्रेज़ों ने हमें ज्ञान दिया । परन्तु यह कहने वाले भूल गये दक्षिणी बिहार के निकट राजगिरी के उस नालन्दा विश्वविद्यालय को जहाँ 10,000 देश व विदेश के छात्र अध्ययन किया करते थे । तक्षशिला विश्वविद्यालय, तमिलनाडु में बिल्लुपुरम् में नौवीं शताब्दी से ग्याहरवीं शताब्दी तक 8,000 विद्यालयों का उल्लेख पाया जाता है । जिन विद्यालयों में मंगोलिया तक के छात्र अध्ययन के लिये आया करते थे । प्रत्येक छात्र पेट व अंतड़ियों का आपरेशन बड़े आराम से कर लिया करता था । परन्तु उन विश्वविद्यालयों का ह्रास हुआ और आई ये आधुनिक शिक्षा जिसके विषय में मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है–

शिक्षे तुम्हारा नाश हो तुम नौकरी के हित बनी ।

भारत की प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने कहा था–

आज़ादी के बाद हमारी दो सबसे बड़ी भूल हैं शिक्षा प्रणाली और नौकरशाही अफसरशाही को ज्यों का त्यों ले लेना । इस शिक्षापद्धति ने नौकरों की भरमार कर दी ।

परन्तु ऋषि दयानंद की प्रेरणा से 1902 ई. में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल पद्धति की स्थापना की और उससे सच्चे मानव का निर्माण किया।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में 10+2+3 को अपनाया गया है। परन्तु यह भी शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है। इसमें मुख्य दोष निम्नलिखित हैं–

1. इस प्रणाली से केवल सैद्धान्तिक शिक्षा ही मिलती है न कि व्यावहारिक। इसके अध्ययन में विद्यार्थी केवल किताबीज्ञान ही प्राप्त करता है।
2. आधुनिक शिक्षाप्रणाली में अंग्रेज़ी भाषा को अत्यधिक महत्ता दी जाती है। पहले अंग्रेजी 5 कक्षा से पढ़ाई जाती थी। अब तो शुरू से ही अंग्रेज़ी पढ़ाई जाती है क्योंकि इसका संबंध रोटी-रोजी से है। अंग्रेज़ी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा तो हो सकती है। परन्तु यह राष्ट्रीय भाषा नहीं हो सकती।
3. इसमें टैस्टों और इंट्रव्यूओं की भरमार है जोकि विद्यार्थी को परेशान करती है।
4. इसके पाठ्यक्रम बहुत लम्बे और कठिन हैं। जिन्हें अध्यापकगण उचित रूप से पूरे भी नहीं कर सकते हैं।
5. आज की शिक्षा का पूर्णतः व्यवसायीकरण हो चुका है। जबकि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य विद्यार्थी का भौतिक व आध्यात्मिक विकास करना है।
6. इसमें आदर्श अध्यापकों का अभाव है। हमें कोई भी आदर्श अध्यापक नहीं मिलता। यदि आदर्श अध्यापक मिलता भी है तो वह अपवाद ही है।
7. स्कूलों व कॉलेजों में अनुशासन का भी अभाव है।
8. आजकल बहुत कम स्कूलों व कॉलेजों में धार्मिक शिक्षा प्रदान की जाती है। जैसे कि राजगोपाल आचार्य ने लिखा है–

   चरित्रवान् भारतीयों के निर्माण के लिये स्कूलों में प्रत्येक लड़के और लड़की को धार्मिक शिक्षा देना अनिवार्य होना चाहिये।

इसलिये आधुनिक शिक्षा प्रणाली में अधोलिखित सुधार आवश्यक हैं।

1. पाठ्यक्रम मनोवैज्ञानिक, संतुलित और व्यावहारिक होना चाहिये ।
2. राष्ट्रभाषा व प्रांतीय भाषाएं शिक्षा का माध्यम बनें ।
3 छात्राओं के अध्ययन का पाठ्यक्रम ऐसा हो जिसके द्वारा वे गृहविज्ञान, शिल्पकला आदि में निपुण बने ।
4. शुल्क भी सामान्य ताकि निर्धन छात्र भी इसमें शिक्षा का लाभ उठा सकें ।
5. कृषि विज्ञान को विशेष महत्त्व दिया जाये ।
6. माता-पिता अपने बच्चों को संस्कार प्रदान करें ताकि वे भविष्य में अच्छे नागरिक बन सकें ।
7. शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास होना चाहिए ।
8. धर्म शिक्षा का भी स्कूलों व कॉलेजों में प्रचलन होना चाहिये ताकि विद्यार्थियों के चरित्र का विकास हो सके ।

अतः उपर्युक्त विवरण के अध्ययन के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आधुनिक शिक्षा पद्धति में सुधार की परमावश्यकता है क्योंकि इसका पूर्णतः व्यवसायीकरण हो चुका है । परन्तु इसके साथ-साथ शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मानव का सर्वतोमुखी विकास होना चाहिये ताकि वह सच्चे अर्थों में मानव बन कर मानवता की सेवा कर सके ।

8. गौमाता

गौमाता की परम कृपा से, सुख समृद्धि का बसेरा ।
गोधन से दुःख दरिद्र भागे, सब ग्रंथों का सार घनेरा ।।

गाय, गायत्री, गीता, गंगा और गुरु भारतीय संस्कृति के पाँच आधार स्तंभ हैं और इसी प्रकार भारतीय संस्कृति में पांच माताएं मानी जाती हैं—गौमाता, धरतीमाता, जन्मदात्रीमाता, पत्नी की माता और गुरुमाता । मेरा निष्कर्ष एवं सार यह है कि पंचगव्य अर्थात् गाय के घी, दूध, दही, मूत्र एवं मल सब अमृत हैं । चरकशास्त्र में लिखा है—

स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम् ।
गुरु मंदं प्रसन्नं च गव्यं दश गुण पयः ।।

—चरक सूत्र स्थान 27.216

गाय का दूध मीठा, ठण्डा, कोमल, स्नेहयुक्त, गाढ़ा-चिकना, चिपचिपा कुछ भारी मंद देर से बिगड़ने वाला और निर्मल—इन 10 गुणों से युक्त होता है । इसी प्रकार महाभारत में लिखा है -

पयसा हविसा दध्ना शकृता चाथचर्मणा ।
अस्थिभिश्योपकुर्वन्ति शृंगैर्बलिंश्च भारत ।। —अनुशासन पूर्व 66.89

गायें घी, दूध, दही, गोबर से और मरने के बाद चर्म, हड्डी और बालों से भी मनुष्यों का उपकार करती है ।

हाय ! फिर भी यह बड़े दारुण दुर्भाग्य का विषय है कि भारत में 1947 ई. से पूर्व केवल 245 गायों के क़त्लखाने थे । महाभारत के काल में भारत की जनसंख्या 16 करोड़ थी और गायें 96 करोड़ थी । 1947 में गायों की जनसंख्या 121 करोड़ थी और अब इनकी संख्या लगभग 4 करोड़ से भी कम रह गई है । परन्तु अब इन क़त्लखानों की संख्या बढ़कर 3650 हो गई है । आज कल भारत में हज़ारों गायों का प्रतिदिन क़त्ल किया जाता है । यह हमारे लिये बड़े शर्म और कलंक की बात है । गौमाता पर जब यह अत्याचार सहन नहीं हुआ तो 1990 ई. में राजीव भाई और राजीव भाई जैसे कुछ समविचारी लोगों ने सुप्रीम कोर्ट में मुक़द्दमा किया । एक संस्था है भारत में अखिल भारतीय गौ सेवक संघ जिससे राजीव भाई जुड़े हुए थे और इस संस्था

का मुख्य कार्यालय जोकि राजीव भाई के शहर वर्धा में ही है। एक दूसरी संस्था है उसका नाम है 'अहिंसा आर्मी ट्रस्ट' तो दोनों ने सुप्रीम कोर्ट में मुक़द्दमा दाखिल किया और बाद में पता चला कि गुजरात सरकार भी मुक़द्दमे में शामिल हो गई।

सुप्रीम कोर्ट में मुक़द्दमा किया गया कि गाय की हत्या नहीं होनी चाहिए। तो सामने बैठे कसाई लोगों ने कहा, क्यों नहीं होनी चाहिए?जरूर होनी चाहिए। राजीव भाई की तरफ से सुप्रीम कोर्ट में अपील की गई कि ये एक-दो जज का मामला नहीं है। इसमें बड़ी बैंच बनाई जाये। लगभग 4 वर्ष तक तो सुप्रीम कोर्ट ने स्वीकार ही नहीं किया। बाद में मान लिया कि चलो इसके लिए संवैधानिक सभा बनाई जायेगी। भारत के थोड़े दिन पहले चीफ जस्टिस रहे श्री आर. सी. लाहोटी ने अपनी अध्यक्षता में 7 जजों की एक संवैधानिक सभा बनाई जिसमें 2004 से सितम्बर 2005 तक मुक़द्दमे की सुनवाई चली।

कसाइयों की तरफ से लड़ने वाले भारत के सभी बड़े-बड़े वकील जो 50-50 लाख तक फीस लेते हैं सभी कसाइयों के पक्ष में थे। राजीव भाई की तरफ से लड़ने वाला कोई बड़ा वकील नहीं। क्योंकि फीस देने को इतना पैसा नहीं। राजीव भाई ने कोर्ट से कहा कि हमारे पास तो कोई वकील नहीं है तो क्या करेंगे। तो कोर्ट ने कहा हम अगर आपको वकील दें?तो राजीव भाई ने कहा बड़ी मेहरबानी होगी या फिर आप हमें ही बहस का मौका दे दें तो भी बड़ी मेहरबानी होगी। तो उन्होंने कहा कि हाँ, आप भी बहस कर लीजिए। हम आपको कोर्ट का वकील दे देंगे। वकील ने केस लड़ना आरम्भ किया।

मुक़द्दमे में कसाइयों द्वारा गाय काटने के लिए वही सारे कुतर्क रखे गए जो कभी शरद पवार द्वारा बोले गए या इस देश के अधिक पढ़े-लिखे लोगों द्वारा बोले जाते हैं एवं जो देश के पहले प्रधानमंत्री नेहरु द्वारा कहे गये थे।

कसाइयों का पहला कुतर्क

(1) गाय जब बूढ़ी हो जाती है तो बचाने में कोई लाभ नहीं उसे क़त्ल करके बेचना ही बढ़िया है। हम भारत की अर्थव्यवस्था को मजबूत बना रहे हैं क्योंकि गाय का मांस विदेशों में बेच रहे हैं।

दूसरा कुतर्क

(2) भारत में गाय के चारे की कमी है । भूखी मरे इससे अच्छा यह है कि हम उसका क़त्ल करके बेचें ।

तीसरा कुतर्क

(3) भारत में लोगों के रहने के लिये जमीन नहीं है गाय को कहाँ रखें ?

चौथा कुतर्क

(4) इससे विदेशी मुद्रा मिलती है ।

और सबसे खतरनाक कुतर्क जो कसाइयों की ओर से दिया गया कि इस्लाम धर्म में लिखा हुआ है कि हम गायों की हत्या करें । कसाई लोग कौन हैं ?आप जानते हैं ?मुसलमानों में एक कुरैशी समाज है जो सबसे अधिक जानवरों की हत्या करता है उनकी ओर से ये कुतर्क हैं ।

राजीव भाई की ओर से बिना क्रोध प्रकट किये बहुत ही धैर्य से इन सब कुतर्कों का तर्कपूर्वक उत्तर दिया गया ।

पहले कुतर्क का उन्होंने उत्तर दिया कि मांस बेचते हैं तो देश को आय होती है । तो राजीव भाई ने सारे आंकड़े सुप्रीम कोर्ट में रखे कि एक गाय को जब काट देते हैं तो उसके शरीर में से कितना मांस निकलता है ?कितना खून निकलता है ?कितनी हड्डियां निकलती हैं ?

एक स्वस्थ गाय का भार 3 से साढ़े तीन क्विंटल होता है । उसे जब काटे तो उसमें से 70 किलो मांस निकलता है । एक किलो गाय का मांस जब भारत से विदेश में जाता है तो उसका मूल्य है लगभग 50 रुपये प्रति किलो होता है । तो 70 किलो को 50 से गुणा करने पर 3500 रुपये होता है ।

खून जो निकलता है वो लगभग 25 लीटर होता है जिससे कुल कमाई 1500 रुपये या 2000 रुपये होती है । फिर हड्डियां निकलती हैं वो भी 30-35 किलो हैं जो 1000-1200 के लगभग बिक जाती हैं । तो कुल मिलाकर एक गाय का जब क़त्ल करें और मांस, हड्डियां, खून समेत बेचें तो सरकार को या क़त्ल करने वाले कसाई को 7000 रुपये से अधिक नहीं मिलता है ।

फिर राजीव भाई द्वारा कोर्ट में दूसरी बातें रखी गई यदि गाय को क़त्ल

न करें तो क्या मिलता है?हमने क़त्ल किया तो 7000 रुपये मिलेगा और इसको जिंदा रखें तो कितना मिलेगा?

एक स्वस्थ गाय एक दिन में 10 किलो गोबर देती है और ढाई से 3 लीटर मूत्र देती है। गाय के एक किलो गोबर से 33 किलो खाद बनती है तो कोर्ट के जज ने कहा, यह कैसे संभव है?

राजीव भाई द्वारा कहा गया आप हमें समय दीजिए और स्थान दीजिए। हम आपको यही सिद्ध करके बताते हैं। जब कोर्ट ने आज्ञा दी तो राजीव भाई ने उनको पूरा करके दिखाया और कोर्ट से कहा कि I.A.R.I. के वैज्ञानिकों को बुला लो और टैस्ट करा लो तो गाय का गोबर कोर्ट ने टेस्ट करने के लिए भेजा। वैज्ञानिकों ने कहा कि इसमें 18 पोषक तत्व हैं जो सभी खेत की मिट्टी को चाहियें। जैसे मैगनीज, फासफोरस, पोटाशियम, कैल्शियम, आयरन, कोबाल्ट, सिलिकोन आदि हैं। रासायनिक खाद में मुश्किल से तीन तत्व होते हैं। तो गाय का खाद रासायनिक से 10 गुणा अधिक शक्तिशाली है यह तर्क कोर्ट ने माना।

राजीव भाई ने कहा यदि आपके प्रोटोकाल के विरुद्ध न जाता हो तो आप चलिए हमारे साथ और देखें कहाँ-कहाँ हम 1 किलो गोबर से 33 किलो खाद बना रहे हैं। राजीव भाई ने कहा मेरे अपने गाँव में मैं बनाता हूँ। मेरे माता-पिता दोनों किसान हैं। पिछले 15 वर्षों से हम गाय के गोबर से ही खेती करते हैं। एक किलो गोबर है तो 33 किलो खाद बनता है। एक किलो खाद का जो अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में भाव है वो 6 रुपये है। तो रोज 10 किलो गोबर से 330 किलो खाद बनेगी जिसे 6 रुपये किलो के हिसाब से बेचें तो 1800 से 2000 रुपये प्रतिदिन का गाय के गोबर से मिलता है।

इस प्रकार एक वर्ष में कितने का गोबर मिलेगा?1800 को 365 से गुणा कर लो। गाय की सामान्य आयु 20 वर्ष है और वो जीवन के अंतिम दिन तक गोबर देती है। अगर 1800×365×20 कर लें तो 1 करोड़ से ऊपर केवल गोबर ही मिल जाएगा।

धर्मशास्त्रों में लिखा गया है कि गाय के गोबर में लक्ष्मी जी का वास है। मैकाले के मानस पुत्र जो आधुनिक शिक्षा से पढ़कर निकले हैं जिन्हें

अपना धर्म, संस्कृति-सभ्यता सब पाखंड ही लगता है। सदा इस बात का मजाक ही उड़ाते हैं कि गाय के गोबर में लक्ष्मी? तो यह उन सब के लिए हमारा उत्तर है क्योंकि ये बात सिद्ध होती है कि गाय के गोबर से खेती कर, अनाज उत्पन कर धन कमाया जा सकता है और पूरे भारत का पेट भरा जा सकता है।

अब मूत्र की बात करते हैं, रोज का 2-सवा दो लिटर तो होता ही है। इससे शुगर, जोड़ों के दर्द, क्षय रोग आदि रोगों की औषधियाँ बनती हैं। गाय के एक लिटर मूत्र की बाज़ार में दवा के रूप में कीमत 500 रुपये है। वो भी भारत के बाजार में। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में तो इससे भी अधिक है। आपको मालूम है?अमेरिका में गो मूत्र पेटेंट है और अमेरिकी सरकार हर वर्ष भारत से गाय का मूत्र आयात करती है और कैंसर व शुगर की दवा बनाते हैं। तो गाय के मूत्र से लगभग रोज की 3000 रुपये की आय बनती है। एक वर्ष का 3000×365=1095000 तो 20 वर्ष का 3000×365× 20 = 21900000 इतना तो गाय के गोबर और मूत्र से हो गया।

इसी गाय के गोबर से एक गैस निकलती है जिसे मिथेन कहते हैं। मिथेन वही गैस है जिससे आप अपने रसोई घर का सिलेंडर चला सकते हैं और आवश्यकता पड़ने पर 4 पहियों वाली गाड़ी भी चला सकते हैं।

जैसे एल.पी.जी. गैस से गाड़ी चलती है वैसे मिथेने गैस से भी गाड़ी चलती है। जब जज साहिब को विश्वास नहीं हुआ तो राजीव भाई ने कहा यदि आप आज्ञा दें तो आपकी कार में मैथेन गैस का सिलेंडर लगवा देते हैं आप चला के देख लीजिए। उन्होंने आज्ञा दी और राजीव भाई ने सिलेंडर लगवा दिया। जब जज साहब ने 3 महीने गाड़ी चलाई तब उन्होंने कहा यह बहुत अच्छा है क्योंकि खर्चा आता है मात्र 50 से 60 पैसे किलोमीटर और डीजल से आता है 4 रुपये किलोमीटर। मिथेन गैस से गाड़ी चले तो धुआँ बिल्कुल नहीं निकलता। डीजल गैस से चले तो धुआँ ही धुआँ। मिथेन से चलने वाली गाड़ी में शोर बिल्कुल नहीं होता और डीजल से चले तो इतना शोर होता है कि कान फट जाएं। तो ये सब जज साहब की समझ में आ गया।

फिर हमने कहा रोज का 10 किलो गोबर इकट्ठा करें तो एक वर्ष में कितनी मैथेन गैस निकलती है ?और 20 वर्ष में कितनी मिलेगी और भारत में 17 करोड़ गाय हैं । सबका गोबर एक साथ इकट्ठा करें और उसका ही प्रयोग करें तो 1 लाख 32 हजार करोड़ की बचत इस देश को होती है । बिना डीजल और बिना पेट्रोल के हम पूरा यातायात इससे चला सकते हैं । अरब देशों से भीख मांगने की आवश्यकता नहीं और पेट्रोल डीजल के लिए अमेरिका से डॉलर खरीदने की आवश्यकता नहीं ।

जब इतने सारे आंकड़े राजीव भाई ने कोर्ट के सामने रखे तो सुप्रीम कोर्ट के साहब जज ने मान लिया गाय की हत्या करने से अधिक उसको बचाना आर्थिक रूप से लाभकारी है ।

जब कोर्ट की राय आई तो ये मुस्लिम कसाई लोग भड़क गए उनको लगा कि अब केस उनके हाथ से गया । क्योंकि उन्होंने कहा था कि गाय का क़त्ल करो 7000 रुपये की आय पाओ लेकिन इधर राजीव भाई ने सिद्ध कर दिया कि क़त्ल ना करो तो लाखों करोड़ों की आय होगी । उन्होंने कहा कि गाय का क़त्ल करना हमारा धार्मिक अधिकार है तो राजीव भाई ने कोर्ट में कहा अगर ये इनका अधिकार है तो इतिहास में पता करो कि किस-किस मुस्लिम राजा ने अपने इस धार्मिक अधिकार का प्रयोग किया ?इस पर कोर्ट ने कहा ठीक है एक कमीशन बैठाओ, बुलाओ और जितने मुस्लिम राजा भारत में हुए उनके ऐतिहासिक दस्तावेज निकालो । किस-किस राजा ने अपने इस धार्मिक अधिकार का पालन किया यह पता लगाया जाए ।

पुराने दस्तावेज जब निकाले गए तो उससे पता चला कि भारत में जितने भी मुस्लिम राजा हुए एक ने भी गाय का क़त्ल नहीं किया । इसके उल्टा कुछ राजाओं ने गायों के क़त्ल के विरुद्ध कानून बनाए । उनमें से एक का नाम था बाबर । बाबर ने अपनी पुस्तक 'बाबरनामा' में लिखवाया कि ''मेरे मरने के बाद भी गौवध विरोधी कानून जारी रहना चाहिए ।'' तो उसके पुत्र हुमायूँ ने भी उसका पालन किया और उसके बाद जितने मुगल राजा हुए सबने इस कानून का पालन किया ।

फिर दक्षिण भारत के राजा हैदर अली ने एक कानून बनवाया था कि अगर कोई गाय की हत्या करेगा तो हैदर उसकी गर्दन काट देगा। हैदर अली ने ऐसे सैंकड़ों कसाइयों की गर्दन काटी थी, जिन्होंने गाय को काटा था। फिर हैदर अली का बेटा टीपू सुल्तान आया तो उसने इस कानून को थोड़ा हल्का कर दिया। उसने कानून बना दिया कि गर्दन की बजाय हाथ काट दिए जाएंगे। टीपू सुल्तान के समय में कोई भी अगर गाय काटता था तो उसके हाथ काट दिये जाते थे।

ये दस्तावेज जब कोर्ट के सामने आये तो राजीव भाई ने जज साहब से कहा कि आप जरा बताइए अगर इस्लाम में गाय को क़त्ल करना धार्मिक अधिकार होता तो बाबर जो कट्टर मुसलमान था, 5 वक्त की नमाज पढ़ता था, औरंगज़ेब तो सबसे ज्यादा कट्टर था। इन्होंने क्यों नहीं गाय का क़त्ल करवाया?और क्यों गाय का क़त्ल रोकने के लिए कानून बनवाए?क्यों हैदर अली ने कहा कि वह गाय का क़त्ल करने वाले की गर्दन काट देगा?

राजीव भाई ने कोर्ट से कहा कि आप हमें आज्ञा दें तो हम ये क़ुरान, हदीस आदि जितनी भी पुस्तकें हैं उन्हें कोर्ट में पेश करते हैं और कहाँ लिखा है कि गाय का क़त्ल करो ये जानना चाहते हैं। आपको पता चलेगा कि इस्लाम की किसी भी धार्मिक पुस्तक में नहीं लिखा है कि गाय का क़त्ल करो। हदीस में तो लिखा हुआ है कि गाय की रक्षा करो क्योंकि वो तुम्हारी रक्षा करती है। पैग़म्बर मुहमद साहब का कथन कि गाय अबोध जानवर है इसलिए उस पर दया करो। एक जगह लिखा है गाय का क़त्ल करोगे तो दोज़ख में भी जगह नहीं मिलेगी।

राजीव भाई ने पुनः कोर्ट से कहा अगर क़ुरान ये कहती है मुहम्मद साहब ये कहते हैं, हदीस ये कहती है तो फिर ये गाय का क़त्ल करना धार्मिक अधिकार कब से हुआ?पूछो इन कसाइयों से?इस पर कसाई बौखला गए। तब राजीव भाई ने कहा अगर मक्का मदीना में भी कोई किताब हो तो ले आओ।

अतः कोर्ट ने उनको एक मास का समय दिया कि जाओ और दस्तावेज ढूंढ के लाओ जिसमें लिखा हो कि गाय का क़त्ल करना इस्लाम का मूल

अधिकार है। एक महीने तक भी कोई दस्तावेज नहीं मिला। कोर्ट ने कहा अब हम अधिक समय नहीं दे सकते। अंत में 26.10.2005 ई. को फैसला आ गया।

ये 66 पन्नों का फैसला है। सुप्रीम कोर्ट ने एक इतिहास बना दिया और उन्होंने कहा कि गाय को काटना संवैधानिक पाप है, धार्मिक पाप है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि गौ रक्षा करना, संवर्धन करना देश के प्रत्येक नागरिक का संवैधानिक कर्त्तव्य है। सरकार का तो है ही नागरिकों का भी संवैधानिक कर्त्तव्य है। अब तक जो संवैधानिक कर्त्तव्य थे जैसे संविधन का पालन करना, राष्ट्रीय ध्वज का सम्मान करना, क्रांतिकारियों का सम्मान करना, देश की एकता अखंडता को बनाए रखना आदि। अब इसमें गौ की रक्षा करना भी जुड़ गया है।

सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि भारत के सारे राज्यों की सरकारों की जिम्मेदारी है कि वो गाय का क़त्ल अपने-अपने राज्यों में बंद करवाएं। किसी राज्य में गाय का क़त्ल होता है तो उस राज्य के मुख्यमंत्री की जिम्मेदारी है, राज्यपाल की जवाबदारी, चीफ सैक्रेटरी की जिम्मेदारी है, वो अपना काम पूरा नहीं कर रहे हैं तो ये राज्यों के लिए संवैधानिक जवाबदेही है।

कानून दो स्तर के बनाए जाते हैं। एक जो केन्द्र सरकार बना सकती हैं और दूसरा राज्यों की सरकारें बना सकती हैं। यदि केन्द्र सरकार ही बना दे तो किसी राज्य सरकार को बनाने की आवश्यकता नहीं। केन्द्र सरकार का कानून पूरे देश में लागू होगा। आप सब केन्द्र सरकार पर दबाव बनाएं जब तक केन्द्र सरकार कानून नहीं बनाती तब तक अपने-अपने राज्य की सरकारों पर दवाब बनाएं।

याद कीजिए उस क्रांतिकारी मंगल पांडेय को जिसने इतिहास बना दिया। वह फांसी पर चढ़ गया लेकिन गाय की चर्बी के कारतूस अपने मुंह से नहीं खोले। जिस अंग्रेज़ अधिकारी ने उसको मजबूर किया उसको मंगल पांडे ने गोली मार दी। तो हमने कहा था कि हमारी तो आज़ादी का इतिहास गौ

रक्षा से शुरू होता है । इसलिए गाय की रक्षा उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी हमारी आज़ादी की रक्षा महत्वपूर्ण है ।

हम देखते हैं कि अंग्रेजी काल 1760 ई. में गोहत्या आरम्भ हुई । महर्षि दयानंद जी ने गोरक्षा के लिये ''गोरक्षण और कृषि सुधार संगठन'' की स्थापना की थी । उन्होंने गोरक्षा पर सैंकड़ों व्याख्यान दिये । उन्होंने कर्नल ब्रुक से कहा :

आप हमारे देश में नुकसान का काम करते हैं । एक गौ से इतने अधिक आदमियों को लाभ पहुँचता है । परन्तु आप अकेले मारकर खा जाते हो ।

महर्षि दयानंद जी ने 1881 ई. में ''गोकरुणा.निधि'' नामक पुस्तक भी लिखी जिसमें गाय के अनेक लाभ बतलाए गए । इस पुस्तक में तो उन्होने यहाँ तक लिख डाला–

गो आदि पशुओं के नाश होने से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है । -गोकरुणानिधि

इसके अतिरिक्त महर्षि दयानंद जी ने गोवध बंद कराने के लिये एक करोड़ हस्ताक्षर करवाकर महारानी विक्टोरिया को भेजने का अभियान आरंभ किया था । यहाँ तक कि उन्होंने 3 लाख 50 हज़ार हस्ताक्षर एकत्र भी कर लिये थे । परन्तु उनकी असामयिक मृत्यु के कारण यह अभियान रुक गया । उन्होंने गोरक्षा पर प्रभावशाली लेख भी प्रकाशित किये । यहाँ तक कि उन्होंने राष्ट्रपरक वेदभाष्य कर वेद मंत्रों का सत्यार्थ जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जिससे गोहत्या करने वाले सभी आलोचकों का मुँह बंद कर दिया । उन्होंने अहिवाल नरेशराव युधिष्ठिर को प्रेरणा देकर भारत की पहली गोशाला की स्थापना 1878 ई. में करवाई ताकि गौमाता का संरक्षण हो सके ।

इसके पश्चात् जब भारत 755 वर्ष गुलाम रहने के उपरांत 15.8. 1947 ई. को स्वतंत्र हुआ तो अनेक संत-महात्माओं ने गोहत्या बंद करवाने के लिये अनेकों आंदोलन किये और वे जेलों में भी गये । जैसे संत विनोबा भावे ने आमरण अनशन की घोषणा की कि भारत की पवित्र भूमि से गोहत्या सर्वथा बंद होनी चाहिये । परन्तु सरकार ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया और विवश होकर उन्होंने गोरक्षार्थ आमरण अनशन कर ही दिया । इससे प्रजा व

सरकार में हलचल मच गई। इसके पश्चात् तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने घोषणा कर दी कि शीघ्र ही लोकसभा में गोरक्षार्थ विधेयक प्रस्तुत कर देंगे। यह आश्वासन देने पर संत विनोबा जी ने 4 दिन के बाद अपना अनशन समाप्त कर दिया। परन्तु इस पर भी लोकसभा में विधेयक प्रस्तुत नहीं हो सका। क्योंकि कुछ समय के बाद मोरारजी देसाई सरकार ही जाती रहीं। यहाँ तक कि श्री गोपालमणि जी अब तक भारत के 14 विभिन्न राज्यों में गौहत्या के विरुद्ध रैलियां कर चुके हैं। वे इस कलंक को भारत से मिटाना चाहते हैं। उनका यह प्रयास अत्यंत श्लाघनीय है।

हरियाणा में अब गौहत्या करना संगीन एवं गैरजमानती अपराध होगा। गौहत्या पर 10 साल तक की कैद होगी। 16.1.2015 को विधानसभा में गौवंश संरक्षण व गौ संवर्धन विधेयक 2015 सर्वसम्मति से पारित कर दिया गया। इसी प्रकार भारत के अन्य राज्य भी गौ हत्या को बंद करने के कानून बनायें।

26.10.2005 ई. में सुप्रीम कोर्ट ने कानून पास कर दिया कि गोहत्या गैर-कानूनी है। परन्तु केन्द्र और राज्य सरकारों ने इसे अभी तक लागू नहीं किया है। केन्द्र सरकार को चाहिए कि भारत के सारे राज्यों को आदेश दे कि इस कानून को लागू करके गोहत्या को बंद कर दे ताकि सारे भारतवासी गाय के दूध और गाय से पूरा-पूरा लाभ उठा सकें। जैसे कि हम जानते हैं कि गाय को मारने से इतना लाभ नहीं होता जितना इसको जीवित रखने से है क्योंकि यह अत्यंत लाभकारी पशु है।

अन्ततः इतना ही कहना काफी होगा कि राष्ट्रहित में गोहत्या शीघ्रातिशीघ्र बंद होनी चाहिये और शेर के स्थान पर गाय को राष्ट्रीय पशु घोषित करना चाहिये।

9. चार पलियाँ

इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति की निम्नलिखित चार पलियाँ होती हैं जो सदा उसके साथ रहती हैं और कभी भी उससे अलग नहीं होती हैं ।

1. शरीर :–

आदमी का जिस्म क्या है, जिसपै शैदा है जहाँ ।
एक मिट्टी की इमारत, एक मिट्टी का मकाँ ।।
खून तो गारा है इसमें, ईंटें इसमें हड्डियाँ ।
चंद सांसों पर खड़ा है यह खयाली आसमाँ ।।
मौत की पुरजोर आँधी इससे जब टकरायेगी ।
देख लेना यह इमारत खुद-ब-खुद गिर जायेगी ।।

संसार का सर्वोत्तम सुख स्वस्थ शरीर माना जाता है यदि व्यक्ति का शरीर स्वस्थ न हो तो संसार की कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लगती है । इसके बिना व्यक्ति न तो भौतिक सुख प्राप्त कर सकता और न आध्यात्मिक । अतः महर्षि चरक लिखते हैं–

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत ।
तद्भावेहि भावनां सर्वभावः शरीरिणम् ।।

-चरक संहिता निदान 617

संसार के सब कार्यों को छोड़कर सर्वप्रथम शरीर की देखभाल करनी चाहिए । क्योंकि इसके ठीक न रहने पर सब कुछ होता हुआ भी बेकार हो जाता है । अतः एक हिन्दी कवि ने कितना सुन्दर कहा है–

पहला सुख निरोगी काया ।
दूसरा सुख घर हो माया ।।
तीसरा सुख सुशीला नारी ।
चौथा सुख पुत्र आज्ञाकारी ।।

वस्तुतः मानवशरीर का मंत्रीमंडल निम्नलिखित है–

1. आत्मा – राष्ट्रपति
2. मन – प्रधान मंत्री
3. फेफड़े – गृह मंत्री

4. हृदय – वित्त मंत्री
5. चमड़ी – रक्षा मंत्री
6. दांत – खाद्य मंत्री
7. पैर – यातायात मंत्री
8. नाक – स्वास्थ्य मंत्री
9. आँखें – कानून एवं संचार मंत्री
10. कान – डाक एवं तार मंत्री
11. हाथ – उद्योग एवं संसाधन मंत्री
12. जीभ – प्रसारण मंत्री
13. दिमाग़ – शिक्षा मंत्री
14. पेट – ऊर्जा मंत्री

प्रिय पाठकगण! मानवशरीर की महत्ता के विषय में भी आपको महात्मा आनंद स्वामी जी के जीवन की एक घटना सुनाना चाहता हूँ। लाहौर के लाहौरी और शाहआलमी दरवाज़े के बाहर किसी समय एक बाग़ था। वहाँ पर एक फ़कीर रहता था, जिसके दोनों बाजू नहीं थे। बाग़ में मच्छर बहुत होते थे। महात्मा आनंद स्वामी जी ने उस फ़कीर को देखा। हाथ न होने के कारण वह आवाज देकर, माथा झुकाकर पैसा मांगता था। एक दिन महात्मा आनंद स्वामी जी उसके पास गये और उस से पूछा–

भाई, पैसे तो माँग लेते हो। लोग तुम्हारे इस प्याले में फेंक देते हैं। परन्तु रोटी कैसे खाते हो।

फ़कीर ने उत्तर दिया–

जब पैसे इकट्ठे हो जाते हैं, शाम हो जाती है, तो वह जो परे नानबाई की दुकान है न। उसको आवाज़ देता हूँ–ओ जुम्मा! आ जा, पैसे जमा हो गये है। इन्हें ले जाओ, मुझे रोटियाँ दे जाओ, तब वह आता है, पैसे उठाकर ले जाता है, रोटियाँ दे जाता है।

आनंद स्वामी जी ने उस फ़कीर से पूछा–

रोटी तो आ गई परन्तु आप खाते कैसे हो?

उसने उत्तर दिया–

स्वयं तो मैं खा नहीं सकता। रोटी सामने पड़ी रहती है। तब मैं सड़क पर जाने वालों को आवाज देता हूँ-सामने जाने वालो! ख़ुदा करे तुम्हारे हाथ सदा स्थिर रहें। मुझ पर दया करो। तरस खाओ। मुझे रोटी खिला दो। मेरे हाथ नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्ति तो सुनता नहीं। परन्तु किसी-किसी को दया आ जाती है। वह प्रभु का प्यारा मेरे पास आ बैठता है। अपने हाथ से ग्रास तोड़कर मेरे मुँह में डालता है और मैं खाता हूँ।

उस फ़कीर की आँखों में आँसू थे। आनंद स्वामी जी का दिल भर आया। उन्होंने फिर भी पूछा–

रोटी तो इस प्रकार खा लेते हो भाई। परन्तु पानी कैसे पीते हो?

उसने कहा–

सामने घड़ा रखा है न?उसके पास जाता हूँ। बैठकर एक टाँग से इसको सहारा देता हूँ। दूसरी टाँग से इसके मुँह के नीचे प्याला करता हूँ और प्याले में पानी आ जाता है।

आनंद स्वामी जी ने पूछा–पीते कैसे हो?

उसने उत्तर दिया–पशुओं की भाँति प्याले पर झुककर पीता हूँ।

स्वामी जी ने कहा–परन्तु यहाँ मच्छर भी तो बहुत हैं। यदि माथे पर या शरीर पर मच्छर लड़ जाये तो फिर क्या करते हो?

वह बोला–

मच्छर तो सचमुच बहुत हैं। मेरा यह शरीर देखो, माथा देखो, सबको मच्छरों ने लहूलुहान कर रखा है। माथे पर कोई मच्छर लड़ जाये तो माथे को जमीन पर रगड़ता हूँ और शरीर के दूसरे भाग पर पड़ जाये तो पानी से निकली हुई मछली की भाँति भूमि पर लोटता हूँ और तड़पता हूँ।

हाय-हाय! केवल दो हाथ नहीं और कितनी दुर्गति बन रही है।

इस शरीर की निन्दा मत करो। वस्तुतः यह अनमोल रत्न है। इसका प्रत्येक अंग इतना मूल्यवान है कि संसार का कोई भी कोष इसका मूल्य नहीं दे सकता। परन्तु इसके साथ यह भी देखो कि यह शरीर मिला किसलिए है?इसका प्रत्येक अंग किस उद्देश्य के लिए है?इससे लाभ उठाओ। इसका प्रयोग करो, परन्तु जीवन के वास्तविक आदर्श को न भूल जाओ। यह यौवन

बर्बाद करने के लिये नहीं मिला । ये आँखे पापों को ढूंढने के लिए नहीं मिली । यह कान निन्दा सुनने के लिए नहीं मिले । ये हाथ दूसरों का गला घोंटने के लिए नहीं मिले । यह वाणी कड़वा बोलने और आग लगाने के लिये नहीं मिली । अपितु यह वाणी प्रभुस्मरण करने और मीठा व सत्य बोलने के लिए मिली है ।

शरीर भी अनेक प्रकार के होते हैं--(1) भौतिक शरीर, (2) सूक्ष्म शरीर, (3) कारण शरीर, (4) महाकारण शरीर, (5) ज्ञान शरीर, (6) विज्ञान शरीर । जब किसी भी व्यक्ति की मृत्यु होती है तो उसका केवल भौतिक शरीर ही मरता है और शेष शरीर आत्मा के साथ रहते हैं । मानव शरीर अत्यंत मूल्यवान है । अतः संसार के प्रत्येक व्यक्ति को इसे स्वस्थ रखने के लिये निम्नलिखित पाँच बातें अपने जीवन में अवश्य अपनानी चाहियें ।

(1) प्रातः जागरण, (2) व्यायाम एवं प्राणायाम, (3) सात्विक भोजन, (4) संयमित जीवन, (5) प्रभुसमर्पण ।

2. धन :–

She is the sovereign queen of all delights.
For her the lawyer pleads, the soldier fights.

धन प्रत्येक व्यक्ति की बड़ी चालाक पत्नी है । मृत्यु के बाद यह दूसरा विवाह कर लेती है । मेरे कहने का भाव यह है कि इसे सगे संबंधी लूट लेते हैं । परन्तु जीवन में अधिकांश व्यक्ति इससे अत्यधिक प्रेम करते हैं । मानव जीवन में धन का अत्यधिक महत्व है । यहाँ तक कि प्रत्येक व्यक्ति की आधारभूत आवश्यकताएं– रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्ति भी धन के द्वारा ही होती हैं और इसके अतिरिक्त अन्य सुविधाएँ व वैभव की पूर्ति भी धन से होती है । धन के अभाव से मानवजीवन एक दिन भी नहीं चल सकता है क्योंकि धन एक साधन है न कि साध्य । धन एक अच्छा सेवक है न कि स्वामी । धन की महत्ता के विषय में आपको अपने जीवन की एक घटना सुनाना चाहता हूँ । मैं 1970 ई. में पटियाला से चण्डीगढ़ की बस में रवाना हुआ । उस बस में लगभग 70 वर्ष के एक संत बैठे थे । जब कंडक्टर ने उनसे टिकट के पैसे मांगे तो उन्होंने कहा कि जब मेरा शिष्य आयेगा वही पैसे देगा क्योंकि मेरे पास तो एक भी पैसा नहीं है । परन्तु किसी कारण से उनका शिष्य समय पर नहीं पहुँचा और जब बस चलने को तैयार हुई तो कंडक्टर ने

कहा कि बाबाजी टिकट लो या बस से नीचे उतर जाओ । परन्तु मैंने कंडक्टर को कहा कि मुझे ही बाबाजी का शिष्य समझ लो और मैंने उसे टिकट के पैसे दे दिये । मेरी उदारता को देखकर बाबा और बस में बैठी सब सवारियां हैरान हो गई । बाबा जी ने मेरी बहुत प्रशंसा की । संत जी और मैं जब चण्डीगढ़ बस स्टैंड पहुँचे तो उन्होंने कहा कि बेटा मुझे भूख बहुत लगी है । हम दोनों ने नाश्ता किया और मैंने संत को रिक्शा में बैठाकर उनके गंतव्य स्थान पर भेज दिया । यह सारी घटना सुनाने का मेरा यही तात्पर्य है कि संत-महात्मा का भी धन के बिना गुजारा नहीं है । अतः अपनी आवश्यकताओं के अनुसार धन की सबको जरूरत पड़ती है। परन्तु आवश्यकता से अधिक धन 99 का चक्र है जो कभी भी पूरा नहीं होता है । जब तक संतोष नहीं आता तब तक कभी भी शांति नहीं मिल सकती है । जैसे महात्मा कबीर लिखते हैं–

गोधन, गजधन, बाजधन और रतन धन खान ।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान ।।

परन्तु धन मृत्यु के पश्चात् व्यक्ति के साथ नहीं जाता जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

हाथों खाली यहाँ से सिकन्दर गया ।
सब खजानों की चाबी धरी रह गयी ।।
वैद्य लुक़मान को भी क़जा खा गयी ।
जिन्दग़ानी का कोई भरोसा नहीं ।।

फिर भी धन सब कुछ नहीं है । यदि धन सब कुछ होता तो कोई भी धनी दुःखी न होता, न बीमार होता और न मरता । अनेक वस्तुएं जैसे नींद, समय, ज्ञान, शांति, संतोष, स्वास्थ्य, सेवक आदि धन से कभी भी नहीं खरीदे जा सकते हैं । अतः आचार्य श्री सुदर्शन जी लिखते हैं–

कितना भी धन संग्रह कर लो,
मन में शांति नहीं होती ।
भरलो हीरा मोती घर में,
किसी कफ़न की जेब नहीं होती ।

–संगीतमय रामकथा (उत्तरकांड पृ. 715)

3. बंधु-बांधव :–

माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्रियाँ आदि हमारे बंधु-बांधव होते हैं । ये सब शरीर एवं स्वार्थ के संबंध हैं । जहाँ शरीर समाप्त हुआ इसके साथ ये सारे संबंध समाप्त हो जाते हैं । सगे-संबंधी व्यक्ति के साथ केवल श्मशान तक ही जाते हैं । परन्तु अच्छे संबंधी वे होते हैं जो विपत्ति के समय व्यक्ति के साथ सहानुभूति करते हैं । विपत्ति में सहायता करते हैं और एक दूसरे के काम आते हैं । अच्छे संबंधियों का आपस में प्रेम होना चाहिये परन्तु आजकल ऐसे संबंधी बहुत कम मिलते हैं । जैसे जाफ़र जटल्ली फरमाते हैं –

न यारों में रही यारी, न भय्यो मे वफ़ादारी ।
मुहब्बत उठ गई सारी, अजब यह दौर आया है । ।

4. धर्म :–

धर्म प्रत्येक व्यक्ति की चौथी पत्नी है । धर्म पर चलने वाले व्यक्ति बिरले ही होते हैं । मृत्यु के समय केवल धर्म ही व्यक्ति के साथ जाता है । अब प्रश्न उठता है कि धर्म क्या है ?मैंने धर्म की परिभाषा इस प्रकार की है–

धर्म न मंदिर में मिले, धर्म न मस्जिद में मिले ।
धर्म न गिरजे में मिले, धर्म न गुरुद्वारे में मिले ।
धर्म न ग्रंथों में मिले, धर्म न हाट बिकाये ।
धर्म उसे ही मिले जो इसे अपनाये । ।

प्रिय पाठकगण ! मैं आपकी सेवा में धर्म के महत्व को व्यक्त करने के लिये एक दृष्टांत सुनाना चाहता हूँ–

एक व्यक्ति था । उसके तीन मित्र थे । पहला मित्र (धन) ऐसा था जिसके लिये वह जान देता था । दूसरा मित्र (बंधु-बांधव) जिन्हें वह समझता था कि समय पर काम आयेंगे । तीसर मित्र (धर्म) ऐसा था जिसकी ओर वह ध्यान ही नहीं देता था । एक दिन उसके विरुद्ध शत्रु ने मुक़द्दमा कर दिया । वह पहले मित्र के पास गया जिस पर वह जान देता था और उसको सारी रामकथा सुना दी । उसने कहा कि हमारी मित्रता केवल घर तक ही सीमित

है । घर के बाहर झगड़ों में मैं आपका साथ नहीं दे सकता । इसके पश्चात् वह दूसरे मित्र के पास गया और उसने कहा कि मैं आपकी केवल कोर्ट के बाहर तक ही सहायता कर सकता हूँ । परन्तु मुक़द्दमा आपको स्वयं ही लड़ना पड़ेगा । फिर वह तीसरे मित्र (धर्म) के पास पहुँचा । वह तुरंत उसके साथ चला गया और कोर्ट में जाकर उसने स्वयं उसका केस लड़ा । वस्तुतः संसार में प्रत्येक व्यक्ति के निम्नलिखित तीन मित्र हैं–

(1) धन :– व्यक्ति धन को अपना सबसे बड़ा मित्र मानता है । परन्तु समय आने पर वह भी साथ नहीं देता ।

(2) बंधु-बांधव :– दूसरे मित्र सगे-संबंधी होते हैं वे भी कोर्ट के द्वार तक ही जाते हैं । मृत्यु के पश्चात् चार कंधों पर रखकर श्मशान में दाह संस्कार के पश्चात् छोड़कर चले जाते हैं ।

(3) धर्म :– यह कोर्ट में हमारे साथ जाकर हमारा केस लड़ता है । वस्तुतः यही हमारा सच्चा मित्र है । जैसे कि एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

धन धरा के बीच में सारा खड़ा रह जायेगा ।
पशु भी बंधे रह जायेंगे जब कूच का दिन आयेगा ।।
नारी घर के द्वार तक साथ देगी लोक में ।
मित्रगण मरघट से आगे मुँह नहीं दिखलायेंगे ।।
देह भी तेरी चिता में यूंही जल भुन जायेगी ।
अंत में एक धर्म सच्चा सखा तेरे साथ जायेगा ।।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेर-ओ-शायरी

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. **Great Thoughts**
29. **General English (Part I to V)**
    (For All Classes)